

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
 उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
 साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
 हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
 हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
 जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
 जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
 जय रघुनन्दन जय सियाराम। ब्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
 रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥
 (संस्करण २,२५,०००)

धर्माचरण ही सच्चा मित्र है

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यं
 आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
 प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां
 धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः॥

इस सम्पूर्ण पृथ्वीका आधिपत्य (सम्पत्ति-अधिकारादि) हवामें उड़नेवाले बादलके समान (क्षणभंगुर) है, यह धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा सदा बनी ही रहेगी—ऐसा समझना केवल भ्रान्तिमात्र है। इन्द्रियोंके विषय-भोग केवल आरम्भमें ही अर्थात् केवल भोगकालमें ही मधुर लगनेवाले हैं, उनका अन्त अत्यन्त दुःखदायी है। प्राण तिनकेकी नोकपर अटके हुए जलकी बूँदके समान अस्थिर हैं, किस क्षण निकल जायँ; कोई भरोसा नहीं, अहो! एकमात्र धर्माचरण—सत्कर्मानुष्ठान ही ऐसा है, जो मनुष्योंका सनातन एवं सच्चा मित्र है, अतः उसका कभी विरोध (तिरस्कार) नहीं करना चाहिये, अपितु अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक दानधर्मादि सत्कर्मानुष्ठानके अनुपालनमें सतत संलग्न रहना चाहिये।

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते। * कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

वार्षिक शुल्क *
 भारतमें १५० रु०
 सजिल्द १७० रु०
 विदेशमें—सजिल्द
 US\$25 (Rs. 1250)
 (Sea Mail)
 US\$40 (Rs. 2000)
 (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥
 जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
 जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क *
 भारतमें ७५० रु०
 सजिल्द ८५० रु०

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’, पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः ॥

वर्ष

८५

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, जनवरी २०११ ई०

संख्या

१

पूर्ण संख्या १०१०

काशीमें भगवान् शिवका मुक्तिदान

रामेण सदृशो देवो न भूतो न भविष्यति ॥×××

अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा । स्वयं जप्त्वोपदिशति जन्तूनां मुक्तिहेतवे ॥
संसारार्णवसंमग्नं नरं यस्तारयेन्मनुः । स एव तारकस्त्वत्र राममन्त्रः प्रकथ्यते ॥

×××अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः ॥

इति कुर्वन्त्युपदेशं मानवा मुक्तिहेतवे । अन्यच्चापि शववाहैः सदा लोकैर्मुहुर्मुहुः ॥
रामनामैव मुक्त्यर्थं शवस्य पथि कीर्त्यते । रामनाम्नः परो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ॥

रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न होगा ही ।××× इसीलिये काशीमें विश्वनाथ भगवान् शंकर निरन्तर 'राम' नामका स्वयं जप करते हैं और प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया करते हैं । संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यको जो मन्त्र तार देता है, वही तारकमन्त्र राममन्त्र कहलाता है ।××× मनुष्योंकी मुक्तिके लिये लोगोंके द्वारा अन्तिम समयमें उनसे बार-बार यही कहा जाता है कि रामका स्मरण करो, रामका स्मरण करो । इसी प्रकार शव-वहन करनेवाले लोगोंके द्वारा मृतप्राणीकी मुक्तिके लिये शवयात्रामें बार-बार रामनामका ही उच्चारण किया जाता है । रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आजतक

हुआ है और न होगा ही । [भगवद्गीता]

MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

‘दानमहिमा-अङ्क’ की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- काशीमें भगवान् शिवका मुक्तिदान	९	३०- दानवेन्द्र बलिपर भगवान्की अद्भुत कृपा (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) .	९४
मंगलाशंसा—		३१- दानका फल	९६
२- आभ्युदयिक अभ्यर्थना	१७	३२- सनातन हिन्दू संस्कृतिमें दान-महिमा [ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश] [प्रे०—श्रीरामानन्दजी चौरासिया ‘श्रीसन्तजी’]	९७
३- धनान्नदानसूक्त	१८	३३- दानकी महिमा [कविता] (पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक ‘अचल’)	९८
४- दान-सुभाषितावली	१९	३४- दानकी रूपरेखा (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)	९९
५- दान—एक विहंगम दृष्टि (राधेश्याम खेमका)	२३	३५- अमृत-फल [श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीकी अमृतवाणी] [प्रेषिका—डॉ० ब्र० गुणीता, विद्यावारिधि, वेदान्ताचार्य] ...	१०४
प्रसाद—		३६- पुत्रजन्मके उपलक्ष्यमें श्रीनन्दरायजीद्वारा दिया गया दान (गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज) [प्रे०—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]	१०७
६- भगवान् सदाशिवका दानधर्मोपदेश	३९	३७- दान-प्रश्नोत्तरी (साधुवेशमें एक पथिक)	१११
७- मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दान-मर्यादा	४२	३८- दान-पुण्य (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)	११४
८- भगवान् श्रीकृष्णका दानवचनमृत	४४	३९- दान-धर्म (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वती, भारतधर्म महामण्डल)	११४
९- आचार्य बृहस्पतिद्वारा निरूपित दानकी तात्त्विक बातें ..	४७	४०- यज्ञ-दानादिसे गृहस्थजनोंका स्वतः कल्याण हो जाता है [ब्रह्मलीन संत स्वामी श्रीचैतन्यप्रकाशानन्दीर्थजी महाराजके सदुपदेश] [प्रस्तोता—श्रीत्रिलोकचन्द्रजी सेठ]	११८
१०- महर्षि वाल्मीकिद्वारा निरूपित दान-धर्मकी महिमा	५०	४१- सर्वस दान (स्वामी श्रीप्रज्ञानानन्दजी सरस्वती)	११९
११- राजर्षि मनुका दानविधान	५३	४२- ब्रह्मलीन श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराजके दान-सम्बन्धी अमृतोपदेश [प्रेषक—श्रीरामानन्दप्रसादजी]	१२०
१२- प्रेमदान [कविता]	५५	४३- सिन्धके संत स्वामी टेऊरामजी महाराजके दान-प्रसंग [स्वामी श्रीशान्तिप्रसादजी महाराज]	१२१
१३- महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा निरूपित दानतत्त्व	५६	४४- दानसे धन एवं मनकी शुद्धि (गोलोकवासी परमभागवत संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज) [प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]	१२३
१४- महर्षि वेदव्यासद्वारा निरूपित दानका माहात्म्य	५८	४५- आर्थिक समताका शास्त्रीय उपाय—दान (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)	१२४
१५- महात्मा संवर्तकी दानमीमांसा	६२	४६- दान देने-लेनेमें सावधानीकी आवश्यकता (गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)	१२७
१६- महामुनि सारस्वतकी दाननिष्ठा	६५	४७- दानका रहस्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१२८
१७- राजर्षि रन्तिदेवकी दानशीलता और अतिथिसेवा	६८	४८- दान और दया	१३०
१८- पितामह भीष्मकी दानतत्त्वमीमांसा	७०	४९- भूदान—संस्कृतिका सर्वोत्तम दर्शन (आचार्य श्रीविनोबाजी भावे)	१३१
१९- धर्मराज युधिष्ठिरद्वारा प्रतिपादित क्षमादानकी महिमा	७५		
२०- आद्य शंकराचार्यजीकी दृष्टिमें दानका स्वरूप	७७		
२१- श्रीरामानुजमतमें दान-प्रतिष्ठा	८०		
२२- श्रीमध्वाचार्यजीके द्वैतमतमें शारीरिक भजन—दान	८२		
२३- श्रीवल्लभाचार्यजीका पुष्टिमार्ग और दान-सरणि	८३		
२४- श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें दानमहिमा [शास्त्री श्रीकोसलेन्द्रदासजी]	८५		
२५- श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नामदान [स्वामी श्रीअज्ञानानन्दजी महाराज]	८७		
२६- श्रीरमणमहर्षिका उपदेशदान [डॉ० एम०डी० नायक]	८८		
२७- दान—श्रद्धाका प्रतिफलन [श्रीअरविन्दके आलोकमें] [श्रीदेवदत्तजी]	८९		
२८- दानसे धनकी शुद्धि होती है [ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्यपाद श्रीउडियाबाबाजी महाराजके सदुपदेश] [प्रस्तुति—भक्त श्रीरामशरणदासजी]	९१		
२९- दानसे अनेक जन्मोंतक सुख प्राप्त होता है (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज) [प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी] [प्रेषक—श्रीअनिरुद्धकुमार गोयल]	९२		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
५०- सोनेका दान [एक आख्यान]	१३१	७०- अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति [अन्नदानसे श्रेष्ठ दूसरा दान नहीं] (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी)	१६९
५१- सम्मान-दान (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३२	७१- गरीबके दानकी महिमा [प्रेरक-प्रसंग]	१७२
५२- 'दातव्यमिति यद्दानम्' (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास) [प्रेषक—श्रीरजनीकान्तजी शर्मा]	१३७	दानतत्त्वविमर्श—	
५३- दान-जिज्ञासा [प्रश्नोत्तरी] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१३८	७२- दानदर्शनकी मीमांसा (एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दूबे 'आथर्वण')	१७३
५४- सबसे बड़ा दान अभयदान [एक आख्यान]	१३९	७३- दानतत्त्वविमर्श (आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)	१७७
५५- शुद्ध धनका दान ही पुण्यदायक होता है (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी) [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	१४०	७४- सम्पत्तिको विपत्ति बननेसे बचाता है—दान (श्रीबालकविजी वैरागी)	१८०
५६- भगवान् श्रीरामद्वारा विभीषणको अभयदान (साकेतवासी आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज 'रामायणी') [प्रेषिका—श्रीमती मधुरानी ज० अग्रवाल]	१४३	७५- 'दानमेकं कलौ युगे' (श्रीकुलदीपजी उप्रेती)	१८२
५७- दानके अधिष्ठातृ-देवकी स्तुति (श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)	१४६	७६- दान ही साथ जायगा (आचार्य श्रीब्रजबन्धुशरणजी) ..	१८७
आशीर्वाद—		७७- दानीको मिलनेवाले प्रतिदानका सूक्ष्म विज्ञान (श्रीअशोकजी जोषी, एम०ए०, बी०एड०)	१८९
५८- सर्वश्रेष्ठ धर्म है दान (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)	१४७	७८- दान—आत्मोत्सर्गकी विधि (डॉ० श्रीमहेन्द्रजी मधुकर, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	१९०
५९- वेदवाणी	१५०	७९- अपरिमित है दानकी महिमा (डॉ० श्रीराजारामजी गुप्ता)	१९४
६०- 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाय्येतद् व्रतं मम' (अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१५१	८०- त्याग और दान (श्रीओम नमो चतुर्वेदीजी)	१९६
६१- दानस्वरूपविमर्श (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१५७	८१- दान—क्यों, कब और किसको ? (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	१९९
६२- चिरकारी प्रशस्यते	१५८	८२- त्याग [स्वामी रामतीर्थ]	२०१
६३- शुभांशा (अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ कांचीकाम- कोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज)	१५९	८३- दान स्वर्ग-सोपान है (डॉ० श्रीओ३म् प्रकाशजी द्विवेदी) .	२०२
६४- काम-क्रोधादिको जीतनेके उपाय	१५९	८४- मनुष्यका सबसे बड़ा आभूषण है—दान (आचार्य श्रीपौराणिकजी महाराज) [प्रे०—श्रीगोपालजी शर्मा] ..	२०४
६५- दानमेयोदय (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरु- पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द- सरस्वतीजी महाराज)	१६०	८५- दानकी महिमा (श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद) .	२०५
६६- श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यसिद्धान्तमें वैष्णवी मन्त्रदीक्षादानकी महिमा (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य- पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)	१६१	८६- मानवका उत्कर्ष-विधायक अमोघ साधन—दान (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०)	२०९
६७- कलियुगका कल्पवृक्ष—दान (महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी) .	१६२	८७- दानका माहात्म्य (डॉ० पुष्पाजी मिश्रा, एम०ए०, पी-एच०डी०)	२११
६८- दान-दर्शन (गीतामनीषी स्वामी श्रीवेदान्तानन्दजी महाराज)	१६५	८८- सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ है (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी, एम० कॉम०)	२१३
६९- दान दो [कविता]	१६८	८९- दान देनेसे जीवन शुद्ध और श्रेष्ठ होता है (श्रीशिवरतनजी मोरोलिया, शास्त्री, एम०ए०)	२१६
		९०- दान देनेवालेका धन नष्ट नहीं होता (श्रीप्रेमबहादुरजी कुलश्रेष्ठ 'बिपिन', बी०एस-सी०, एम०ए०, बी०एड०)	२१७
		९१- दानका शास्त्रीय स्वरूप (आचार्य श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए०)	२१९
		९२- दानसे कल्याण (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम० ए०)	२२२

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
९३- सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दान करो (श्रीभगवत्प्रसादजी विश्वकर्मा)	२२४	पी-एच०डी०, डी०लिट०)	२७३
९४- दान-महिमा (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, वरिष्ठ धर्माधिकारी)	२२५	१२०- क्षमा-दानका प्रेरणास्पद प्रसंग (श्रीमती चेतनाजी गुप्ता)	२७८
९५- दान सच्चा मित्र है (डॉ० श्रीशिव ओमजी अम्बर)	२२६	१२१- सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल (ला०बि०मि०)	२७९
९६- शास्त्रोंके सन्दर्भमें दान-ग्रहीताकी पात्रता (श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०)	२२७	१२२- और्ध्वदैहिक दानका महत्त्व [राजा बभ्रुवाहनका आख्यान]	२८०
९७- दान—दिव्य अनुष्ठान (श्रीमती मृदुला त्रिवेदी एवं श्री टी०पी०त्रिवेदी)	२२९	१२३- भक्तका अद्भुत अवदान [भक्त गयासुरकी कथा]	२८१
९८- दान-दोहावली [कविता] (श्रीसुरेशजी, साहित्यवाचस्पति)	२३४	१२४- उत्तम दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें [सत्तूदानकी कथा] (सु० सि०)	२८२
९९- प्रतिग्रह-विचार	२३५	१२५- सर्वस्व-दान [महाराज हर्षवर्धनकी कथा] (श्री 'चक्र')	२८३
१००- पंचमहायज्ञों तथा बलिवैश्वदेवमें दानका स्वरूप (सुश्री रजनीजी शर्मा)	२३७	१२६- दान एवं नीतिपूर्वक कमाया गया धन [दो आख्यान] (श्रीनरेन्द्रकुमारजी शर्मा, एम० ए०, बी० एड०)	२८८
१०१- आपके हाथों दानकी परम्परा चलती रहे (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच०डी०) ...	२३८	१२७- दान देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेका दुष्परिणाम [सियार और वानरकी कथा]	२९०
१०२- पाणिनिके 'चतुर्थी सम्प्रदाने' सूत्रका रहस्य (श्रीउदयनाथजी अग्निहोत्री)	२४०	१२८- दानवीर राजर्षियोंके आख्यान और दानकी गाथाएँ	२९१
दानधर्मके आदर्श चरित एवं प्रेरक-प्रसंग—		१२९- ज्ञान-दान	२९९
१०३- भगवान्द्वारा प्रदत्त दानके कुछ रोचक प्रसंग (स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)	२४१	१३०- आदर्श दानकी महत्ता [कहानी] (श्रीगणनात्रा दयालजी लक्ष्मीदास)	३०२
१०४- दानके प्रेरक प्रसंग [प्रेषिका—सुश्री उमा ठाकुर]	२४५	१३१- जीमूतवाहनका आत्मदान (श्री 'चक्र')	३०५
१०५- दानकी साधना [प्रेषक—श्रीजगदीशचन्द्रजी सोनी] ...	२४६	१३२- दानके कुछ प्रेरक-प्रसंग	३०८
१०६- दानसम्बन्धी कुछ प्रेरक आख्यान (श्रीशिवकुमारजी गोयल)	२४७	१३३- आत्मदान [मेघवाहनकी कथा]	३११
१०७- दानके कुछ प्रेरक प्रसंग (श्रीराहुलजी कुमावत, एम०ए०, बी०कॉम०)	२५०	१३४- गोदानसे मनचाहा वरदान मिलता है (श्रीश्रीनिवासजी शर्मा शास्त्री)	३१२
१०८- दानके प्रेरणास्रोत (डॉ० श्रीरमेशचन्द्रजी चवरे)	२५१	१३५- चन्दरी बूआका आदर्श दान (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) .	३१५
१०९- 'जीवनदान' की अमर कहानी (डॉ० श्रीविद्यानन्दजी 'ब्रह्मचारी', पी-एच०डी०, विद्यावाचस्पति, डी०लिट०)	२५३	१३६- युद्धभूमिमें अभयदानकी भारतीय परम्परा (श्रीवीरेन्द्रकुमारजी गौड़, पूर्वकैप्टन एवं महानिरीक्षक)	३१७
११०- महादानी दैत्यराज बलि	२५७	१३७- सर्वस्वदान—शीशदानकी अनूठी दिव्य परम्परा (श्रीशिवकुमारजी गोयल)	३१९
१११- दानके तीन आख्यान (पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)	२५९	१३८- 'दान परम विज्ञान' [कविता] (श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुश') ..	३२८
११२- दानवीर दधीचि (डॉ० श्रीहरिनन्दनजी पाण्डेय)	२६२	विविध दानोंका स्वरूप—	
११३- दानवीर कर्ण [एकांकी नाटक] (श्रीशिवशंकरजी वाशिष्ठ)	२६४	१३९- भगवान् शिवका मुक्तिदान (आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी०)	३२९
११४- मयूरध्वजका बलिदान	२६६	१४०- हृदय-दान (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	३३२
११५- शरणागतरक्षक महाराज शिवि	२६७	१४१- राजा बलिका सर्वस्वदान (डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)	३३४
११६- दैत्यराज विरोचन	२६९	१४२- विद्यादानकी महिमा और उसके विविध प्रकार (डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूड़ामणि)	३३६
११७- महादानी महाराज रघु	२७०	१४३- दानकी महिमा [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	३३७
११८- श्रीकृष्णभक्त कवि रहीमजीकी दानशीलता (श्रीजगदीश- प्रसादजी त्रिवेदी, एम०ए० (हिन्दी), बी०एड०)	२७१	१४४- पुराणग्रन्थोंके दानकी महिमा (श्रीदशरथजी दीक्षित, एम०ए०)	३३८
११९- कठोपनिषद्के नचिकेतोपाख्यानमें प्रतिपादित दानका स्वरूप (डॉ० श्रीश्यामसनेहीलालजी शर्मा, एम०ए०,			

विषय	पृष्ठ-संख्या
१४५- तीन अतिदान (श्रीचैतन्यकुमारजी, बी०एस-सी०, एम०बी०ए०)	३४२
१४६- दानके विविध आयाम (श्रीअशोकजी चितलांगिया) ...	३४३
१४७- क्षमादान (साध्वी निर्मलाजी)	३४७
१४८- गोदानका माहात्म्य (डॉ० श्रीअरुणकुमारजी राय, एम०ए०, पी-एच०डी०)	३४९
१४९- अन्नदान और जलदानके समान कोई दान नहीं (पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री, शास्त्रार्थपंचानन)	३५१
१५०- विविध दान (श्रीरामजीलाल जोशी)	३५३
१५१- आरोग्यदान (वैद्य श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश', भिषगाचार्य) ...	३५६
१५२- कन्यादान महादानम् (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक', एम०ए०, साहित्यरत्न, डी०लिट०)	३५८
१५३- कन्यादान (डॉ० श्रीगोविन्दजी सप्तर्षि)	३५९
१५४- स्वर्णदान—महादान (श्रीश्रीकृष्णजी मुदगिल)	३६०
१५५- प्राणदान (डॉ० श्रीरामकृष्णजी सराफ)	३६२
१५६- 'नास्ति अहिंसासमं दानम्' (श्रीअमितकुमारजी मिश्र)	३६४
१५७- बलिदान-रहस्य (स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)	३६६
१५८- सेवारूपी दान (श्रीगोपालदास वल्लभदासजी नीमा, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०)	३६७
१५९- 'अभौतिक दान' की महानता और वर्तमानमें बढ़ती उसकी प्रासंगिकता (श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०)	३६८
१६०- सोलह महादान	३७०
१६१- 'उनका सब दिन कल्याण है' [कविता] (श्रीभागवताचार्यजी 'आनन्दलहरीमहाराज')	३७२
१६२- और्ध्वदैहिक दान	३७३
१६३- पितरोंके लिये पिण्डदान (श्राद्ध) (श्रीमती रश्मि शुक्ला) .	३७४
१६४- पिण्डदान	३७६
१६५- छत्र और उपानहकी उत्पत्ति-कथा तथा इनके दानकी महिमा	३७८
१६६- तिलदान	३८०
१६७- नवग्रहोंके निमित्त दान (श्रीश्रीनारायणजी शर्मा, ज्योतिषाचार्य)	३८२
१६८- बारह महीनोंके दान	३८६
१६९- संक्रान्ति एवं ऋतुओंके दान (श्रीश्रीरामशर्माजी, ज्योतिषाचार्य)	३९१
१७०- नक्षत्रोंमें विभिन्न वस्तुओंका दान	३९३
१७१- कार्तिकमासका दान—दीपदान (पं० श्रीघनश्यामजी अग्निहोत्री)	३९४
१७२- विविध देय-द्रव्योंके मन्त्र	३९७
१७३- भगवान् सूर्य और सूर्याध्यक्ष	४००

विषय	पृष्ठ-संख्या
१७४- सकुदान (यज्ञ) (आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)	४०५
१७५- महापुरुष वल्लभाचार्यकी यात्रामें कालपुरुषदानकी घटना (नित्यलीलास्थ श्रीकृष्णप्रियाजी 'बेटीजी')	४०६
१७६- कालपुरुषदानकी विधि	४०७
१७७- दानकी महिमा और रक्तदान (डॉ० मधुजी पोद्दार, फिजीशियन)	४०७
१७८- आधुनिक दान (श्रीभानुशंकरजी मेहता)	४१०
१७९- आत्मदानके आदर्श (डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)	४१२
१८०- राष्ट्रके लिये बलिदान सर्वोपरि दान है (डॉ० श्रीश्यामजी शर्मा 'वाशिष्ठ', एम०ए०, पी-एच०डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ)	४१३
१८१- 'बड़ो दान सम्मान' (पं० श्रीबालमीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)	४१४
१८२- भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोपियोंको दिया गया प्रेमदान [अंकन भरि सबकों उर लाऊँ] (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	४१६
१८३- गुड़िया और भिखारी [प्रेरक प्रसंग] (श्रीरामबिहारीजी टण्डन) [प्रे०—सुश्री सुधाजी टण्डन]	४१८
सत्साहित्यमें दान-निरूपण—	
१८४- वैदिक परम्परामें दानका महत्त्व (स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती, कुलाध्यक्ष)	४१९
१८५- वेद-पुराणोंमें अन्न-जलदानका माहात्म्य (श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, रत्नमालीय, एम०ए० द्वय, बी०एड०, पी-एच०डी०)	४२१
१८६- दान-दोहावली (श्रीयुगलकिशोरजी शर्मा)	४२४
१८७- उपनिषदोंमें दानका स्वरूप (श्रीबद्रीनारायणसिंहजी, एम० ए०)	४२५
१८८- मत्स्यपुराणमें वर्णित विविध दान (श्रीमहेशप्रसादजी पाठक, एम०एस-सी०)	४२६
१८९- कूर्मपुराणमें वर्णित दानका स्वरूप (श्रीरणवीरसिंहजी कुशवाहा)	४२९
१९०- पुराणतिहासमें गोदानकी महिमा (श्रीहंसराजजी डावर)	४३०
१९१- आनन्दरामायणमें वर्णित श्रीरामकी दानशीलता (आचार्य श्रीसुदर्शनजी मिश्र, एम० ए०)	४३२
१९२- गीतामें त्रिविध दान (पं० श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य)	४३५
१९३- धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंका दानसाहित्य (श्रीसीतारामजी शर्मा)	४३८
१९४- 'मानस' में दान-महिमा (श्रीरामसनेहीजी साहू)	४४०
१९५- स्वरविज्ञान और दान (श्रीपवनजी अग्रवाल)	४४१
१९६- वीरशैवधर्ममें दान-महिमा (श्रीष०ब०डॉ० सुज्ञानदेव शिवाचार्यजी स्वामी, शिवाद्वैत साहित्यभूषण)	४४३

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१९७-संस्कृत वाङ्मयमें दानधर्मनिरूपण (महामहोपाध्याय डॉ० श्रीवागीशजी शास्त्री)	४४४	(डॉ० श्रीओंकारनारायणसिंहजी)	४७०
१९८-आयुर्वेदशास्त्र और आरोग्यदान	४४६	२१०-प्राचीन अभिलेखोंमें दान-निरूपण (डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि')	४७३
१९९-नीतिमंजरीमें दानकी प्रशस्ति (डॉ० श्रीरूपनारायणजी पाण्डेय)	४४८	२११-विदेशोंकी दान-महिमाके कुछ दृश्य (श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)	४७५
२००-नीतिग्रन्थोंमें दानका माहात्म्य (डॉ० श्रीवागीशजी 'दिनकर', एम०ए०, पी-एच०डी०)	४५१	२१२-सर्वोत्तम धन	४७६
२०१-बृहस्पतिसूरिकी 'कृत्यकौमुदी' का दानप्रकरण (डॉ० श्रीश्रीनिवासजी आचार्य)	४५३	कल्याण-प्राप्तिका सहज साधन—दान २१३-आध्यात्मिक उन्नतिमें दानकी साधनरूपता (डॉ० पुष्पारानीजी गर्ग)	४७७
२०२-ज्ञानेश्वरीमें दानका प्रतिपादन (डॉ० श्रीभीमाशंकरजी देशपांडे एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०) ...	४५५	२१४-ज्ञानदान—सर्वोत्तम दान (डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी)	४८०
२०३-सभी धर्मोंमें दानसे कल्याण (श्रीरामपदारथसिंहजी) ...	४५७	२१५-प्रकृत धर्म—दान (शास्त्रोपासक आचार्य डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)	४८३
२०४-जैनाचारमें दान-प्रवृत्ति (डॉ० श्रीविमलचन्द्रजी जैन, एम०ए०, एल-एल०बी०, पी-एच०डी०)	४५९	२१६-दान—धर्ममय जीवनका दिव्य पक्ष (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)	४८६
२०५-मसीही धर्ममें दानका स्वरूप (डॉ० ए० बी० शिवाजी)	४६४	२१७-धर्मका प्रशस्त द्वार—दान (डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, एम०ए०, बी०एस-सी०, एल-एल० बी०, पी-एच०डी०) ...	४८९
२०६-इस्लाममें दानका विधान (मो० सलीम खाँ फरीद) [आदाबे जिन्द्गी: मौ० मो० यूसुफ इस्लाही]	४६७	२१८-दानसे अध्यात्मकी ओर (श्रीहरिशंकरजी जोशी)	४९०
२०७-इस्लाममें दान—जकात (सुश्री शबीना परवीन)	४६८	२१९-दान—एक महान् मानवधर्म (डॉ० श्रीलल्लनजी ठाकुर, विद्यावाचस्पति)	४९३
२०८-महाराजा विक्रमादित्यकी दान-शैली (श्रीइन्द्रदेवप्रसादसिंहजी)	४६९	२२०-श्रद्धासूक्त	४९४
२०९-राजस्थानके भक्तिसाहित्यमें दानकी महिमा		२२१-नम्र-निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना	४९५

चित्र-सूची (रंगीन चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- प्रजापति ब्रह्माजीद्वारा 'द' अक्षरका दान..... आवरण-पृष्ठ		६- माता अन्नपूर्णाका भिक्षादान	५
२- भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोदान.....	१	७- त्रिविध दान	६
३- महर्षि दधीचिका अस्थिदान	२	८- श्रीरामका महाराज दशरथके निमित्त पिण्डदान करना	७
४- महाराज रन्तिदेवका आदर्श दान	३	९- भगवान् शिवद्वारा काशीमें मुक्तिदान	८
५- दानवीर राजा बलिकी यज्ञशालामें भगवान् वामन	४		

(सादे चित्र)

१- पार्वतीजीको दानधर्मका उपदेश करते भगवान् शिव..	३९	७- महर्षि याज्ञवल्क्य और महाराज जनक.....	५६
२- गोदान प्राप्त करनेके लिये डंडा फेंकते हुए त्रिजट...	४३	८- धनका सदुपयोग	५९
३- धर्मराज युधिष्ठिरको दानकी महत्ता बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण.....	४५	९- यज्ञ करते हुए महाराज मरुत एवं महर्षि संवर्त	६३
४- इन्द्रको भूमिदानके विषयमें उपदेश देते देवगुरु बृहस्पति	४८	१०- दान देते हुए महाराज रन्तिदेव	६८
५- ब्रह्माजीका वाल्मीकिजीको वरदान	५०	११- शर-शय्यापर पितामह भीष्म	७१
६- ब्रह्माजीका मनुको प्रजारक्षणका आदेश	५३	१२- महर्षि जमदग्नि एवं रेणुकाको छत्र तथा उपानह देते ब्राह्मणरूप सूर्य	७४
		१३- क्षमादानी महाराज युधिष्ठिर	७५

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१४- आद्य श्रीशंकराचार्य	७७	५१- ब्राह्मणोंको दान देते राजा सुहोत्र	२९२
१५- आचार्य श्रीरामानुज	८०	५२- राजा शिबिके यज्ञमें भोजन करते लाखों ब्राह्मण	२९३
१६- आचार्य श्रीमध्वाचार्य	८२	५३- मान्धाताको अपनी अमृतमयी अँगुलीका पान कराते	
१७- आचार्य श्रीवल्लभाचार्य	८३	इन्द्र	२९४
१८- आचार्य श्रीरामानन्द	८५	५४- विविध वस्तुओंका दान करते राजा अम्बरीष	२९५
१९- श्रीचैतन्यमहाप्रभु	८७	५५- अपने पुत्रोंसहित गायों, अश्वों तथा गजोंका दान	
२०- श्रीरमणमहर्षि	८९	करते हुए महाराज शशबिन्दु	२९६
२१- श्रीउडियाबाबाजी	९१	५६- सिंह आदि जन्तुओंका दमन करते बालक भरत	२९६
२२- इन्द्रासनपर बैठकर दान करता हुआ जुआरी	९५	५७- ब्राह्मणोंको सुवर्णके हाथी दान करते हुए आदिराज	
२३- स्वामी श्रीटेऊरामजी	१२१	पृथु	२९७
२४- गदहेको जल पिलाते एकनाथजी महाराज	१२८	५८- तोपकी नलीमें घुसता जापानी तोपची	३०८
२५- विराटनरेशसे अपने अपमानकी बात कहती महारानी		५९- बालक हकीकतरायका धर्मके लिये प्राणदान	३०९
द्रौपदी	१३३	६०- बच्चोंका समुद्रके यात्रियोंको मार्ग दिखाना	३१०
२६- विभीषणका राजतिलक करते भगवान् श्रीराम	१४३	६१- गौओंसे शरण माँगती माता लक्ष्मी	३१४
२७- कौत्सको दान देते महाराज रघु	१४९	६२- चन्दरी बूआका कुआँ बनानेके लिये धनदान	३१६
२८- महाराज दशरथका शनिपर बाण-संधान	१५२	६३- मेवाड़के रणबाँकुरे गोरा-बादल युद्ध करते हुए	३२०
२९- लक्ष्मीजीसहित श्रीविष्णु और सनकादि	१७२	६४- वीरांगना रानी दुर्गावती	३२०
३०- यक्षके प्रश्नोंका उत्तर देते महाराज युधिष्ठिर	१७५	६५- गुरु तेगबहादुरका धर्मरक्षार्थ शीशदान	३२२
३१- महाराज युधिष्ठिरको दानका उपदेश देते भगवान्		६६- गुरु गोविन्दसिंहजीके दो पुत्रोंका बलिदान	३२३
श्रीकृष्ण	१८२	६७- गोभक्त मंगल पाण्डे	३२३
३२- विप्ररूपधारी इन्द्रको कवच-कुण्डल दान करते कर्ण ...	१९०	६८- सरदार ऊधमसिंह	३२७
३३- महाराज जानश्रुति और रैक्व	२००	६९- भगवान् शंकर एवं भगवती पार्वती	३३१
३४- दान देते हुए महाराज अम्बरीष	२०२	७०- ब्राह्मणको पुराणका दान	३३८
३५- सुदामाके तण्डुल खाते भगवान् श्रीकृष्ण	२४४	७१- पुराणग्रन्थोंका दान	३३९
३६- दानके महत्त्वकी चर्चा करते राजकवि एवं राजा भोज ..	२४५	७२- युधिष्ठिरको दानकी महिमा बताते भगवान् श्रीकृष्ण ...	३४२
३७- बलिका सर्वस्वदान	२५८	७३- महर्षि भृगुद्वारा क्षमाकी परीक्षा	३४८
३८- भक्त मनकोजी बोधलापर भगवान्की कृपा	२५९	७४- अश्वत्थामाको महारानी द्रौपदीद्वारा क्षमादान	३४८
३९- भगवान् श्रीकृष्ण एवं सत्यभामा	२६०	७५- जटायुपर भगवान्का अनुग्रह	३६४
४०- अस्थिदानके लिये महर्षि दधीचिसे देवताओंकी प्रार्थना ..	२६३	७६- महर्षि जमदग्निना सूर्यपर क्रुद्ध होना	३७८
४१- बलिदानी महाराज मयूरध्वज	२६७	७७- दीपदान	३९६
४२- बाजरूप इन्द्रको अपना शरीर अर्पित करते राजा शिबि ...	२६८	७८- सूर्यार्घ्यदान	४००
४३- ब्राह्मणरूप इन्द्रको अपना शीश देते दैत्यराज विरोचन ..	२६९	७९- सूर्यनमस्कार	४०६
४४- कौत्सका महाराज रघुद्वारा स्वागत	२७०	८०- भगवान् श्रीकृष्णका वेणुदान	४१६
४५- यमराज एवं नचिकेता	२७५	८१- भगवान् श्रीकृष्ण और गोपियाँ	४१७
४६- लंकामें विभीषणजीका राजतिलक करते लक्ष्मणजी	२७८	८२- गरुड़जीको गोदानका महत्त्व बताते हुए भगवान्	
४७- गयासुरपर भगवान् गदाधरकी कृपा	२८१	विष्णु	४३०
४८- धर्मराज युधिष्ठिरकी यज्ञशालामें नेवलेका प्रवेश	२८२	८३- गुरु, लिंग एवं जंगमोंका अर्चन	४४२
४९- सर्वस्वदानी सम्राट् हर्षवर्धनका बहन राज्यश्रीसे चिथड़ा		८४- राजा धर्मवर्मा एवं देवर्षि नारदजी	४८४
माँगना	२८५	८५- ब्रह्माजीद्वारा देवताओं, राक्षसों एवं मनुष्योंको 'द'	
५०- पूर्वजन्मके विषयमें चर्चा करते वानर एवं सियार	२९०	अक्षरका दान	४८६

दान—एक विहंगम दृष्टि

सफल जीवन जीनेके लिये

दानकी अनिवार्यता

सफल जीवन क्या है? जीवन सफल उसीका है, जो मनुष्य-जीवन प्राप्तकर अपना कल्याण कर ले। भौतिक दृष्टिसे तो जीवनमें सांसारिक सुख और समृद्धिकी प्राप्तिको ही हम अपना कल्याण मानते हैं, परंतु वास्तविक कल्याण है—सदा-सर्वदाके लिये जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना अर्थात् भगवत्प्राप्ति। अपने शास्त्रोंने तथा अपने पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने सभी युगोंमें इसका उपाय बताया है। चारों युगोंमें अलग-अलग चार बातोंकी विशेषता है। सफल मानव-जीवनके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये मानव-धर्मशास्त्रके उद्भावक राजर्षि मनुने चारों युगोंके चार साधन बताये हैं—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें एकमात्र दान मनुष्यके कल्याणका साधन है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण॥

गोस्वामीजीका यह वचन तैत्तिरीयोपनिषद्के निम्न प्रसिद्ध वचनोंपर ही आधृत है—

‘श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। हिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।’

अर्थात् दान श्रद्धापूर्वक करना चाहिये, बिना श्रद्धाके करना उचित नहीं (श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया अदेयम्), अपनी सामर्थ्यके अनुसार उदारतापूर्वक देना चाहिये (श्रिया देयम्), विनम्रतापूर्वक देना चाहिये (हिया देयम्), दान नहीं करूँगा तो परलोकमें नहीं मिलेगा—इस भयसे देना चाहिये अथवा भगवान्ने मुझे देनेयोग्य बनाया है, पर दूसरोंको न देनेपर भगवान्को क्या मुँह दिखाऊँगा—इस भयसे देना चाहिये (भिया देयम्), प्रमादसे, भयसे या उपेक्षापूर्वक न देकर ज्ञानपूर्वक, विधिपूर्वक, आदरपूर्वक एवं उदारतापूर्वक निःस्वार्थ भावसे देना चाहिये (संविदा

देयम्), चाहे जैसे भी दो, किंतु देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परमावश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।

इस प्रसंगमें बृहदारण्यकोपनिषद्की एक कथा है— एक बार देवता, मनुष्य और असुर तीनोंकी उन्नति अवरुद्ध हो गयी। अतः वे सब पितामह प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये और अपना दुःख दूर करनेके लिये उनकी प्रार्थना करने लगे। प्रजापति ब्रह्माने तीनोंको मात्र एक अक्षरका उपदेश दिया—‘द’। स्वर्गमें भोगोंके बाहुल्यसे भोग ही देवलोकका सुख माना गया है, अतः देवगण कभी वृद्ध न होकर सदा इन्द्रिय-भोग भोगनेमें लगे रहते हैं, उनकी इस अवस्थापर विचारकर प्रजापतिने देवताओंको ‘द’ के द्वारा दमन—इन्द्रियदमनका उपदेश दिया। ब्रह्माके इस उपदेशसे देवगण अपनेको कृतकृत्य मानकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले गये।

असुर स्वभावसे ही हिंसावृत्तिवाले होते हैं, क्रोध और हिंसा इनका नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापतिने उन्हें इस दुष्कर्मसे छुड़ानेके लिये—‘द’ के द्वारा जीवमात्रपर दया करनेका उपदेश किया। असुरगण ब्रह्माकी इस आज्ञाको शिरोधार्यकर वहाँसे चले गये।

मनुष्य कर्मयोगी होनेके कारण सदा लोभवश कर्म करने और धनोपार्जनमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने लोभी मनुष्योंको ‘द’ के द्वारा उनके कल्याणके लिये दान करनेका उपदेश दिया। मनुष्यगण भी प्रजापतिकी आज्ञाको स्वीकारकर सफलमनोरथ होकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले गये। अतः मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

‘विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्’

विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके ही फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है। यह तो कहीं भी हो सकता है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना—यह मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, यही है दान-शक्ति, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्यसे ही प्राप्त होती है।

अन्नदान तथा जलदानकी भी कोई समय-सीमा नहीं है। किसी भी समय आवश्यकतानुसार याचक व्यक्तिके उपस्थित होनेपर इस तत्काल करना चाहिये।

३-अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ (गीता १७। २२)

वास्तवमें उपर्युक्त दान दयापर आश्रित हैं। दया भी दानका एक अंग है, किंतु दया और दानमें थोड़ा अन्तर है। दया कभी भी, कहीं भी, किसीपर भी, कोई भी, कैसे भी कर सकता है, इसमें देश, काल और विधि अपेक्षित नहीं है। स्वार्थरहित होकर दूसरेके दुःखको न देख पाना ही दया है। दयाके लिये सभी स्थान, सभी व्यक्ति

(प्राणीमात्र), सभी समय उपयोगी हैं, अनुकूल हैं, किंतु दानके विषयमें ऐसा नहीं है। दया पानेके अधिकारी सब हैं, किंतु दान पानेके अधिकारी मुख्य रूपसे ब्राह्मण ही हैं, अतः दयासे समन्वित दान सबको दिया जा सकता है अर्थात् यह दान प्राणीमात्रके लिये है।

दान और त्याग

किसी वस्तुसे अपनी सत्ता और ममता उठा लेना ही दान है, यह त्याग भी है, परंतु त्याग और दानमें भी थोड़ा अन्तर है। दान मुख्यतः पुण्यका और त्याग देवत्वका हेतु होता है। कोई भी दान त्यागकी श्रेणीमें आता है, किंतु सभी प्रकारके त्याग दान नहीं हैं। दान प्राप्त वस्तुओंका और वह भी सीमित मात्रामें किया जा सकता है, जबकि त्याग अप्राप्त वस्तुओंका और असीमित मात्रामें हो सकता है। दानदाता स्वयंको दान-ग्रहणकर्ताके प्रति अनुगृहीत मानता है, किंतु हर त्यागमें यह आवश्यक नहीं।

अनादिकालसे त्यागपूर्ण जीवनको ही उत्तम माना गया है। पौराणिक गाथाओंमें त्यागके अनेक आदर्श कथानक हैं। महाराज शिबिने एक कबूतरकी प्राणरक्षामें क्षुधातुर बाजके लिये अपने अंग-प्रत्यंगके मांसको काट-काटकर तोल दिया। महर्षि दधीचिने देवताओंके हितमें अपने प्राणोंका उत्सर्गकर अपनी हड्डियाँ दे दीं। महाराज बलिने वामन भगवान्को अपना सर्वस्व तो दिया ही, साथ ही अपना शरीर भी दे दिया। महाराज हरिश्चन्द्र सत्यकी रक्षाके लिये अपने राज्यको त्यागकर स्वयं पत्नी और पुत्रके साथ काशीके बाजारमें बिक गये। रन्तिदेव, महाराज युधिष्ठिर, महान् दानी कर्ण आदिका त्यागपूर्ण जीवन किससे छिपा है? स्वदेशरक्षामें महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाई, सिक्खगुरु तेग-बहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, बालगंगाधर तिलक, सुभाषचन्द्र बोस एवं चन्द्रशेखर आजाद आदिका त्याग भुलाया नहीं जा सकता।

दान आत्माका दिव्य गुण है, यह ध्यान रखना चाहिये कि व्यक्ति जो कुछ अर्जित करता है, वह केवल अपने पुरुषार्थसे नहीं बल्कि उसमें भगवत्कृपा मुख्य कारण है, साथ ही संसारके अनेक प्राणियोंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष

सहयोग भी प्राप्त होता है, इस प्रकार उस प्राप्त धनपर हमारा अकेलेका अधिकार नहीं है। उपनिषदोंमें तो स्पष्ट निर्देश है—‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’ अर्थात् तुम प्राप्त धन-सम्पत्तिका त्यागपूर्वक उपभोग करो। जितना तुम्हारे निर्वाहमात्रके लिये आवश्यक है, उतनेसे अधिकको ते अपना मानो ही मत। वह भगवान्की वस्तु है, उसे चराचर विश्वमें व्याप्त भगवान्की सेवामें लगा दो। निर्वाहमात्रके लिये जितना आवश्यक समझते हो, उसे भी पंचमहायज्ञ आदिके द्वारा त्यागपूर्वक अपने उपयोगमें लाओ। वास्तवमें धनके स्वामी तो एकमात्र लक्ष्मीपति भगवान् ही हैं। श्रीमद्भागवतमें तो यहाँतक कहा गया है कि जितनेसे पेट भरे, उतने ही अन्न-धनपर देहधारीका अधिकार है, उससे अधिकको जो अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७।१४।८)

उपर्युक्त वचनसे परमात्मचिन्तन और त्याग—इन दो बातोंकी आज्ञा मिलती है, वस्तुतः यह परमात्माकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है।

सकामसे निष्कामकी ओर

वेद-पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, घटदान, अष्टमहादान, दशमहादान तथा षोडश महादान आदि परिगणित हैं—ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि निःस्वार्थभावसे भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पणबुद्धिसे किये जायँ तो वे ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

कुछ दान ऐसे हैं, जिन्हें बहुजनहिताय-बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावड़ी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ

जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो

अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।

पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः ।

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि

कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग), (५)

(स्कन्दपुराण)

स्वजन (परिवार)-के लिये—इस प्रकार पाँच प्रकारके धनका विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी आनन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें यह स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व—दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभकर्म करनेमें समर्थ होता है—

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ।

दानं यज्ञस्तपःकर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्यपालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं, प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है।

जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी पालन न कर दूसरोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष—सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है—

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।

मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥

दानका रहस्य

स्कन्दपुराणमें वर्णन है कि राजा धर्मवर्माने दानके

तत्त्वको जाननेके लिये तप किया तो आकाशवाणीद्वारा एक

Hinduism Discord Server: <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shreyash

Hinduism Discord Server: <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shreyash

ध्रुव, त्रिक, काम्य एवं नैमित्तिक—ये चार दानके प्रकार कहे गये हैं। सार्वजनिक कार्योंके लिये जैसे—बाग-बगीचे लगवाना, धर्मशाला बनवाना एवं पीनेके पानीका प्रबन्ध करना—करवाना इत्यादिके लिये दिया गया दान **ध्रुव** है। जो प्रतिदिन दिया जाता है, उसे **त्रिक** कहते हैं। किसी इच्छाकी पूर्तिके लिये किया गया दान **काम्य दान** है। **नैमित्तिक** दान तीन प्रकारका है। ग्रहण, संक्रान्ति आदि कालकी अपेक्षासे किया गया दान कालापेक्ष नैमित्तिक दान है। श्राद्ध इत्यादि क्रियाओंसे जुड़ा दान क्रियापेक्ष नैमित्तिक

९-क्षमादान—कोई शक्तिशाली एवं सामर्थ्यसम्पन्न व्यक्ति अपराध होनेपर भी अपराधीको दण्ड न देकर क्षमा करे तो उसे क्षमादान कहते हैं। यह कोई सहनशील और

पुण्यदान है ।

क्षमाशील मनुष्यकी विशेष महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है—

१३-जपदान—पुण्यदानका ही एक दूसरा रूप है जपदान। कई लोग माता-पिता तथा अपनी सन्तान आदिकी सुख-शान्ति एवं आरोग्यताके लिये जप करते हैं। यह भी एक प्रकारका अप्रत्यक्ष दान है। किसी दूसरेके भलेके लिये जपदान करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस निमित्त नाम-जप आदि भी किये जाते हैं, जिसका दोहरा लाभ है। ऐसे व्यक्ति परोपकारी एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तिके होते हैं।

१४-भक्तिदान—भगवद्भक्तिका मार्ग बताकर उस पथपर आरूढ़ करा देना भक्तिदान है।

१०-सम्मानदान—किसी व्यक्तिको सम्मान देनेसे उसकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है। अतः दूसरोंको सम्मान देनेका स्वभाव बना लेना चाहिये। एक दोहा प्रसिद्ध है—

१५-आशिषदान—किसी साधु-संन्यासी, संत तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मणद्वारा अथवा सती-साध्वी, प्रौढ़ महिलाद्वारा उन्हें प्रणाम, अभिवादन किये जानेपर वे जो आशीर्वाद प्रदान करते हैं, उसे आशिषदानकी संज्ञा दी जाती है।

ये सभी प्रकारके दान मानव-जीवनके कर्तव्यरूपमें आध्यात्मिक उन्नतिके साधन हैं।

गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन दान।
तुलसी कहत पुकार के बड़ो दान सम्मान॥

११-विद्यादान—विद्या ही मनुष्यका सर्वोत्तम धन है। विद्या मूलतः दो प्रकारकी होती है—पारलौकिकी और लौकिकी। पारलौकिकी विद्या अध्यात्मविद्या है। वस्तुतः विद्या वही है, जिससे मुक्ति (मोक्ष) मिले (**सा विद्या या विमुक्तये**)। लौकिकी विद्याका भी कम महत्त्व नहीं है। चौरादिकोंसे नहीं चुराये जानेसे, कभी क्षय न होनेसे तथा सब पदार्थोंसे अनमोल होनेसे विद्याको ही सब पदार्थोंमें उत्तम पदार्थ कहा गया है। विद्यादान अनेक प्रकारसे किया जा सकता है। अध्यापनके द्वारा, छात्रोंको पुस्तकदान देकर, छात्रवृत्ति, आवास तथा अन्यान्य सामग्री देकर भी विद्यादान किया जा सकता है। विद्यालय-महाविद्यालय, विश्वविद्यालय और शोधसंस्थानकी स्थापना करना भी विद्यादानका प्रमुख अंग है।

इसके साथ ही कुछ ऐसे दान हैं जो द्रव्यपर ही आधारित हैं, उनका भी कम महत्त्व नहीं है।

१-आश्रयदान—जो व्यक्ति सम्पन्न और उदार होते हैं, वे धर्मशालाएँ आदि बनवाकर यात्रियोंके लिये रात्रिविश्रामका आश्रय देते हैं। कई अनाथाश्रम, वृद्धाश्रम-जैसी संस्थाएँ निराश्रितोंको आश्रय देती हैं। जहाँ भोजन, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओंको भी प्राप्त करनेकी सुविधा रहती है। इसके साथ ही किसी अभ्यागत, अतिथिको कुछ समयके लिये आश्रय देना भी पुण्यप्रद है।

१२-पुण्यदान—किसी भी अपने स्वजन व्यक्तिको मृत्युके समय या मृत्युके बाद उसे सद्गति मिले, शान्ति मिले, उसका उद्धार हो—इस निमित्त दयावश, करुणावश अपने पुण्यका दान किया जाता है। अपने जीवनके पुण्यवाहक कर्म—व्रत, तीर्थसेवा, सन्तसेवा, अन्नदान आदिक पुण्यफलको किसीक निमित्त सकल्प कर देना

२-भूमिदान—सम्पत्तिशाली व्यक्ति किसी गरीब ब्राह्मणको अथवा अपने अधीनस्थ सेवकको भूमिदान करते हैं तथा मन्दिर, विद्यालय, धर्मशाला, गोशाला इत्यादिके लिये भूमिदान दिया जाता है। भूमिदानका बड़ा महत्त्व है। स्वतन्त्र भारतमें संत विनोबा भावेने गरीब भूमिहीनोंके लिये बड़े लोगोंसे भूमि लेकर भूमिदान कराया था, जो भूदान-आन्दोलनके नामसे प्रसिद्ध है।

3-स्वर्णदान—दानमें स्वर्णदानका विशेष महिमा

है। स्वर्णदानसे ऐश्वर्य और आयुकी वृद्धि शास्त्रोंमें बताया गया है। किसी भी वस्तुके अभावमें उस वस्तुके निष्क्रयके रूपमें स्वर्णदान करनेकी विधि है।

४-कन्यादान—भारतीय संस्कृतिमें कन्यादानकी बड़ी महिमा है। शास्त्रोंमें कन्याको लक्ष्मीस्वरूप मानकर विष्णुस्वरूप वरको प्रदान करनेकी विधि है। इसके साथ ही कन्याके माता-पिता वर-वधूके आभूषण, पोशाक एवं अपनी सामर्थ्यानुसार धन-दहेज भी प्रदान करते हैं तथा दान देनेके कारण कन्याके घरका कुछ स्वीकार नहीं करते। यह एक विशिष्ट परम्परा है।

५-आरोग्यदान—बीमार व्यक्तिको चिकित्सा उपलब्ध कराना तथा गरीब अथवा असहाय व्यक्तिकी औषध, फल, दूधसे सहायताकर और उसके रोगके शमनकी व्यवस्थाकर उसे स्वस्थ कर देना—यह आरोग्यदान है।

६-वस्त्रदान—शरीरकी रक्षाके लिये वस्त्रकी आवश्यकता होती है। कुछ निर्धन और असहाय व्यक्तियोंके पास वस्त्रका अभाव होनेपर उनकी शारीरिक रक्षाके लिये वस्त्रका दान महत्त्वपूर्ण है। शीतकालमें कम्बल आदि ऊनी वस्त्रोंका भी गरीब छात्रों, साधु-संतों, निर्धन, असहाय लोगोंको दान दिया जाता है।

७-ग्रहदान—मनुष्यके जीवनमें ग्रहोंकी दशा बदलती रहती है। ग्रहदशाके अनुसार जीवनमें अनुकूलता-प्रति-कूलताकी अनुभूति होती है। प्रायः प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ग्रहशान्तिके निमित्त उस ग्रहसे सम्बन्धित वस्तुका दान ब्राह्मणको करते हैं। ग्रहोंकी अलग-अलग वस्तुएँ निर्धारित हैं। इस प्रकारके दानसे ग्रहोंको प्रसन्नता होती है और वे कुछ अंशोंमें शान्त भी हो जाते हैं।

८-तुलादान—यह जीवनका महत्त्वपूर्ण दान है। प्राचीनकालमें तो राजालोग स्वर्णसे अपना तुलादान करते थे। शास्त्रोंमें विभिन्न द्रव्योंसे तुलादान करनेकी विधि लिखी है तथा सबके अलग-अलग फल भी लिखे हैं, परंतु बिना किसी कामनाके भगवत्प्रीति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे तुलादान करना विशेष कल्याणकारी है।

९-पिण्डदान—मृत्युके बाद मृत प्राणीकी सुख-

शान्तिके लिये शास्त्रोंमें पिण्डदानकी प्रक्रिया दी गयी है। मृत व्यक्तिके उत्तराधिकारी बेटे-पोतोंका यह कर्तव्य होता है कि वे मृत्युके उपरान्त शास्त्रानुसार पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया पूरी करें। गया आदि तीर्थोंमें भी पिण्डदान करनेकी विधि है। पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये यह परम आवश्यक है।

१०-गोदान—शास्त्रोंमें गोदानकी बड़ी महिमा है। प्राचीन कालमें तो गोको ही सर्वोपरि धन माना जाता था। लौकिक एवं पारलौकिक सभी प्रकारके फलोंकी प्राप्तिके लिये गोदान सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। अन्तिम समयमें मृत्युके पूर्व प्रायः गोदान करनेका लोग प्रयास करते हैं। मृत्युके उपरान्त श्राद्ध आदिमें भी गोदान करनेका विशेष महत्त्व है।

इसके साथ ही जो गायें कसाईके हाथमें चली जाती हैं, उन्हें यदि कसाईसे मुक्त कराकर उनकी सेवा-शुश्रूषाकी जाय तो यह भी एक महत्त्वपूर्ण सत्कर्म है, शास्त्रोंमें लिखा है—

गोकृते स्त्रीकृते चैव गुरुविप्रकृतेऽपि वा।

हन्यन्ते ये तु राजेन्द्र शक्रलोकं व्रजन्ति ते॥

अर्थात् गोरक्षा, अबला स्त्रीकी रक्षा, गुरु और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये जो प्राण दे देते हैं, राजेन्द्र युधिष्ठिर! वे मनुष्य इन्द्रलोक (स्वर्ग) में जाते हैं।

बारह महीनोंके विशिष्ट दान

अपने देशमें छः ऋतुएँ और बारह महीने होते हैं। इन बारहों महीनोंमें ऋतुके अनुसार शास्त्रोंमें विशेष प्रकारके दानोंकी महिमा लिखी है। वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासकी प्रत्येक तिथिमें कुछ-न-कुछ दान अपने सामर्थ्यानुसार देना ही चाहिये, तथापि चैत्रादि विशेष मासोंमें ऋतुपरिवर्तनकी दृष्टिसे उस मासकी प्रकृतिके अनुसार कुछ विशिष्ट वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें तापनिवारणके लिये जलदान, छाता, पंखा आदिका दान, इसी प्रकार शीत ऋतुमें शीतबाधाके निवारणके लिये वस्त्रदान, अग्निदान, लवण, गुड़, तिल, घृत इत्यादि गर्म वस्तुओंका दान करना चाहिये। मेष

१-जीवनकी अनित्यता होनेसे तत्क्षण दान देना चाहिये—मत्स्यपुराणने बताया है कि जब कभी भी धन पासमें आ जाय, जब कभी भी मनमें दान देनेकी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, उसीको दानका मुख्य काल समझना चाहिये;

६-अपमानपूर्वक दान न दे—अपमान करके दान नहीं देना चाहिये; क्योंकि कोई ऐसा करता है तो ऐसेमें

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

वह दाता ही दोषभागी होता है—

नावज्ञया प्रदातव्यं किञ्चिद् वा केनचित् क्वचित्।

अवज्ञया हि यद्वत्तं दातुस्तद्वोषमावहेत् ॥

७-क्रोध करके न दे—शिवधर्मोत्तरपुराणने बताया

है कि दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, होम, जप आदि अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक किये जानेपर भी यदि क्रुद्धावस्थामें किये जाते हैं तो किया हुआ सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है—

दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः।

यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत् ॥

८-अपवित्र अवस्थामें न दे—हारीतस्मृतिमें बताया गया है कि जो शौचाचारसे भ्रष्ट है, उसके स्नान, दान, तप, त्याग, मन्त्रजप, विहितकर्म तथा मांगलिक आचारके नियम—ये सभी कर्म निष्फल होते हैं—

स्नानं दानं तपस्त्यागो मन्त्रकर्म विधिक्रिया ।

मङ्गलाचारनियमाः शौचाद् भ्रष्टस्य निष्फलाः ॥

९-दानमें अँगूठेकी स्थिति—वायुपुराणने निर्देश दिया है कि दान, प्रतिग्रह, होम, भोजन, बलिवैश्वदेव आदि सत्कर्मोंके समय हाथका अँगूठा अँगुलियोंसे मिला रहे। अर्थात् सभी अँगुलियाँ मिली रहनी चाहिये। ऐसा न करनेपर वह दान आदि क्रिया असुरोंको प्राप्त हो जाती है—

दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च।

साङ्गष्टेन सदा कार्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत्॥

१०-दानके समय दोनों हाथ घुटनोंके अन्दर रहें—दान आदि देते समय दोनों हाथोंको घुटनोंके बाहर नहीं रखना चाहिये, ऐसे ही आचमन करते समय भी हाथ घुटनोंके अन्दर रहें—

एतान्येव च कार्याणि दानादीनि विशेषतः ।

अन्तर्जानु विधेयानि तद्वदाचमनं नृप ॥

११-कच्छरहित तथा खुली शिखावाला दानका अधिकारी नहीं—ब्रह्माण्डपुराणने यह बताया है कि धोतीमें खुले हुए कच्छवाला तथा खुली शिखावाला व्यक्ति न तो दान देनेका अधिकारी होता है और न दान लेनेका।

Hinduism Discord Server <https://discord.gg/dl>
 ऐसे ही ब्रह्मयज्ञ आदि कर्मानों में समझना चाहिये

नाधिकारी मुक्तकच्छो मुक्तचूडस्तथैव च।

दाने प्रतिग्रहे यज्ञब्रह्मयज्ञादिकर्मसु ॥

१२-सत्कर्ममें कैसा वस्त्र पहने—ब्रह्माण्डपुराणमें

उल्लेख है कि सभी सत्कर्मोंमें धोतीके साथ उत्तरीय वस्त्र (गमछा, चादर) अवश्य धारण करना चाहिये, जो धुला न हो तथा धोबीके द्वारा धुला हो, ऐसा वस्त्र नहीं पहनना चाहिये—

सोत्तरीयस्ततः कुर्यात् सर्वकर्माणि भावतः ।

अधौते कारुधौते च परिदध्यात् न वाससी ॥

१३-गीले वस्त्रोंसे जप-होम-प्रतिग्रह आदि न करे—महर्षि आपस्तम्बका कहना है कि गीले वस्त्र पहनकर जप, होम, दानग्रहण आदि न करे, साथ ही हाथोंको घुटनोंसे बाहर न करे। ऐसा करके यदि दान आदि किया जाता है तो वह सब राक्षसोंको प्राप्त होता है—

आर्द्रवासस्तु यः कुर्यात् जपहोमप्रतिग्रहम् ।

सर्वं तद्राक्षसं विद्याद् बहिर्जानु च यत् कृतम् ॥

१४-दानमें एक वस्त्रका निषेध—विष्णुपुराणमें बताया गया है कि होम, देवार्चन, आचमन, पुण्याहवाचन, जप तथा दान आदि सत्कर्म एक वस्त्र (केवल धोती) धारणकर नहीं करने चाहिये—

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।

नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे ॥

१५-दानमें प्रौढपाद होकर न बैठे—महर्षि शाङ्खायनने बताया है कि दान, आचमन, होम, भोजन, देवतार्चन, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्मोंमें प्रौढपाद (उकडूँ) होकर न बैठे—

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् ।

प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥

१६-दानमें कुश और यज्ञोपवीतकी महिमा—
छन्दोगपरिशिष्टमें महर्षि कात्यायनके एक वचनमें बताया गया है कि कुशके पवित्र आसनपर बैठनेवाले तथा यज्ञोपवीत धारण करनेवालेको ही दान देना चाहिये अथवा दान ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा वह विफल हो जाता है—

कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना ।

MADE WITH LOVE BY: Avinash/Sharma

महाराज युधिष्ठिरका बहुप्रशंसित अश्वमेध यज्ञ प्रायः समाप्त हो रहा था। उनके सत्य और क्षमताकी धाक दूर-दूर देशोंपर छा रही थी। उनका यश चतुर्दिक् व्याप्त हो रहा था। उसी समयकी बात है। कुछ ब्राह्मण और यज्ञ करानेवाले एक स्थानपर बैठे उनके उस अश्वमेध यज्ञकी

—राधेश्याम खेमका



आभ्युदयिक अभ्यर्थना

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । यांश्च पश्यामि
यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः
सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १ ॥

हे सूर्य ! उदयको प्राप्त होइये, उदयको प्राप्त होइये
और अपने तेजसे मुझे प्रकाशित कीजिये । जिन प्राणियोंको
मैं देखता हूँ और जिनको नहीं भी देखता—उनके विषयमें
मुझे सुमतिवाला कीजिये । आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे
पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें ॥ १ ॥
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि
पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः
पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप हम सबको बड़े सौभाग्यके लिये
न दबनेवाले प्रकाशोंसे सब ओरसे सुरक्षित रखें । आप
हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम
आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें ॥ २ ॥
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः । तुभ्यं
यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः
सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ३ ॥

हे देव ! आप इन्द्र हैं, आप महेन्द्र हैं, आप लोक—
प्रकाशपूर्ण हैं, आप प्रजापालक हैं, यज्ञ आपके लिये
फैलाया जाता है और हवन करनेवाले आपके लिये
आहुतियाँ देते हैं । आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे
पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें ॥ ३ ॥
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् । भूतं
ह भव्यं आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो

बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः
सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ४ ॥

हे देव ! आप असत्में अर्थात् प्राकृतिक विश्वमें सत्
अर्थात् आत्मा हैं, सत्में अर्थात् आत्मामें उत्पन्न हुए जगत
हैं, भूत होनेवालेमें आश्रित हैं, होनेवाले भूतमें प्रतिष्ठित
हुए हैं । आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और
परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें ॥ ४ ॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता
भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ ५ ॥

आप तेजस्वी हैं, आप प्रकाशमय हैं, जैसे आप
तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं तेजसे प्रकाशित होऊँ ॥ ५ ॥
रुचिरसि रोचोसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं
पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ ६ ॥

आप प्रकाशमान हैं, आप देदीप्यमान हैं, जैसे
आप तेजसे तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं पशुओं और ज्ञानके
तेजसे प्रकाशित होऊँ ॥ ६ ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे
नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ १० ॥

उदित होनेवालेको नमस्कार है, ऊपर आनेवालेके लिये
नमस्कार है, उदयको प्राप्त हुएको नमस्कार है, विशेष
प्रकाशमानको नमस्कार है, अपने तेजसे चमकनेवालेको
नमस्कार है, उत्तम प्रकाशयुक्तको नमस्कार है ॥ ७ ॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ ८ ॥

अस्त होनेवालेको नमस्कार है, अस्तको जानेवालेको
नमस्कार है, अस्त हुएको नमस्कार है, विशेष तेजस्वी,
उत्तम प्रकाशमान और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवालेको
नमस्कार है ॥ ८ ॥ [अथर्ववेद]

धनान्नदानसूक्त

[ऋग्वेदके दशम मण्डलका ११७वाँ सूक्त जो कि 'धनान्नदानसूक्त' के नामसे प्रसिद्ध है, दानकी महत्ता प्रतिपादित करनेवाला एक भव्य सूक्त है। इसके मन्त्र उपदेशपरक एवं नैतिक शिक्षासे युक्त हैं। सूक्तसे यही तथ्य प्राप्त होता है कि लोकमें दान तथा दानीकी अपार महिमा है। धनीके धनकी सार्थकता उसकी कृपणतामें नहीं, वरन् दानशीलतामें मानी गयी है। यहाँ मन्त्रोंको अनुवादसहित दिया जा रहा है—]

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते ॥ १ ॥
य आधाय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते ॥ २ ॥
स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥ ३ ॥
न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥ ४ ॥
पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥ ५ ॥
मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥ ६ ॥
कृषन्ति फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभि ध्यात् ॥ ७ ॥
एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥ ८ ॥
समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् संतौ न समं पृणीतः ॥ ९ ॥

देवोंने भूख देकर प्राणियोंका (लगभग) वध कर डाला। जो अन्न देकर भूखकी ज्वाला शान्त करे, वही दाता है। भूखेको न देकर जो स्वयं भोजन करता है, एक दिन मृत्यु उसके प्राणोंको हर ले जाती है। देनेवालेका धन कभी नहीं घटता, उसे ईश्वर देता है। न देनेवाले कृपणको किसीसे सुख प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥ अन्नकी इच्छासे द्वारपर आकर हाथ फैलाये विकल व्यक्तिके प्रति जो अपना मन कठोर बना लेता है और अन्न होते हुए भी देनेके लिये हाथ नहीं बढ़ाता तथा उसके सामने ही उसे तरसाकर खाता है, उस महाक्रूरको कभी सुख प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ घर आकर माँग रहे अति दुर्बल शरीरके याचकको जो भोजन देता है, उसे यज्ञका पूर्ण फल प्राप्त होता है तथा वह अपने शत्रुओंको भी मित्र बना लेता है ॥ ३ ॥ मित्र अपने अंगके समान होता है। जो अपने मित्रको माँगनेपर भी नहीं देता, वह उसका मित्र नहीं है। उसे छोड़कर दूर चले जाना चाहिये। वह उसका घर नहीं है। किसी अन्य देनेवालेकी शरण लेनी चाहिये ॥ ४ ॥ जो याचककी अन्नादिका दान करता है, वही धनी है। उसे कल्याणका शुभ मान

प्रशस्त दिखायी देता है। वैभव-विलास रथके चक्रकी भाँति आते-जाते रहते हैं। किसी समय एकके पास सम्पदा रहती है तो कभी दूसरेके पास रहती है ॥ ५ ॥ जिसका मन उदार न हो, वह व्यर्थ ही अन्न पैदा करता है। संचय ही उसकी मृत्युका कारण बनता है। जो न तो देवोंको और न ही मित्रोंको तृप्त करता है, वह वास्तवमें पापका ही भक्षण करता है ॥ ६ ॥ हलका उपकारी फाल खेतको जोतकर किसानको अन्न देता है। गमनशील व्यक्ति अपने पैरके चिह्नोंसे मार्गका निर्माण करता है। बोलता हुआ ब्राह्मण न बोलनेवालोंसे श्रेष्ठ होता है ॥ ७ ॥ एकांशका धनिक दो अंशके धनीके पीछे चलता है। दो अंशवाला भी तीन अंशवालेके पीछे छूट जाता है। चार अंशवाला पंक्तिमें सबसे आगे चलता हुआ सबको अपनेसे पीछे देखता है। अतः वैभवका मिथ्या अभिमान न करके दान करना चाहिये ॥ ८ ॥ दोनों हाथ एकसमान होते हुए भी समान कार्य नहीं करते। दो गायें समान होकर भी समान दूध नहीं देतीं। दो जुड़वाँ सन्तानें समान होकर भी पराक्रममें समान नहीं होतीं। उसी प्रकार एक कुलमें उत्पन्न दो व्यक्ति समान होकर भी दान करनेमें समान नहीं होते ॥ ९ ॥ [ऋक्० १०।११७]

दान-सुभाषितावली

यद्दाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने ।

तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥

जो विशिष्ट सत्पात्रों को दान देता है और जो कुछ अपने भोजन-आच्छादनमें प्रतिदिन व्यवहृत करता है, उसीको मैं उस व्यक्तिका वास्तविक धन या सम्पत्ति मानता हूँ, अन्धया शेष सम्पत्ति तो किसी अन्यकी है, जिसकी वह केवल रखवालीमात्र करता है।

यद्दाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ।

अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥

दानमें जो कुछ देता है और जितनेमात्रका वह स्वयं उपभोग करता है, उतना ही उस धनी व्यक्तिका अपना धन है। अन्यथा मर जानेपर उस व्यक्तिके स्त्री, धन आदि वस्तुओंसे दूसरे लोग आनन्द मनाते हैं अर्थात् मौज उड़ाते हैं। तात्पर्य यह है कि सावधानीपूर्वक अपनी धन-सम्पत्तिको दान आदि सत्कर्मोंमें व्यय करना चाहिये।

किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः ।

यद्वर्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥

जब आयुका एक दिन अन्त निश्चित है तो फिर धनको बढ़ाकर उसे रखनेकी इच्छा करना मूर्खता ही है,

वह धन व्यर्थ ही है, क्योंकि जिस शरीरकी रक्षाके लिये धन बढ़ानेका उपक्रम किया जाता है—वह शरीर ही अस्थिर है, नश्वर है, इसलिये धर्मकी ही वृद्धि करनी चाहिये, धनकी नहीं। धनके द्वारा दान आदि करके धर्मकी वृद्धिका उपक्रम करना चाहिये, निरन्तर धन बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं।

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

‘शरीरधारियोंके शरीर नश्वर हैं और धन भी सदा साथ रहनेवाला नहीं है; साथ ही मृत्यु भी निकट ही सिरपर बैठी है’—ऐसा समझकर प्रतिक्षण धर्मका संग्रह—धर्माचरण ही करना चाहिये; क्योंकि कालका क्या ठीक कब आ जाय, अतः अपने धन एवं समयका सदा सदुपयोग ही करना चाहिये।

यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ।

यत् परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥

जो धन धर्म, सुखभोग या यश—किसी काममें नहीं आता और जिसे छोड़कर एक दिन यहाँसे अवश्य ही चले जाना है, उस धनका दान आदि धर्मोंमें उपयोग क्यों नहीं किया जाता?

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।

वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥

शूरवीर व्यक्ति तो सौमेंसे खोजनेपर एक प्राप्त हो जाता है, हजारमें ढूँढ़नेपर एक विद्वान् व्यक्ति भी मिल जाता है, इसी प्रकार एक लाखमें सभापर नियन्त्रण करनेवाला कोई वक्ता भी प्राप्त हो जाता है, किंतु असली दाता खोजनेपर भी मिल जाय, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, अर्थात् दानी व्यक्ति संसारमें सबसे अधिक दुर्लभ है।

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः ।

इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः ॥

शूरवीर वही है जो वास्तवमें इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करता है, युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला असली शूरवीर नहीं है। मात्र शास्त्रोंका अध्ययन करनेवाला ज्ञानी नहीं है, बल्कि तदनुकूल धर्माचरण करनेवाला ही सच्चा ज्ञानी है।

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।

सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित् ॥

दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है। यथोचित रीतिसे दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है।

न सोऽस्ति राजन् दानेन वशगो यो न जायते ।

दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम् ॥

राजन्! ऐसा कोई नहीं है, जो दानद्वारा वशमें न किया जा सके। दानसे देवतालोग भी सदाके लिये मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं।

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम ।

प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते ॥

नृपोत्तम! सारी प्रजाएँ दानके बलसे ही पालित होती हैं। दानी मनुष्य संसारमें सभीका प्रिय हो जाता है।

न केवलं दानपरा जयन्ति

भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।

जयन्ति ते राजसूरेन्द्रलोकं

सूदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥

दानको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन बताया गया है।

[illegible]

दानं कामफला वृक्षा दानं चिन्तामणिर्नृणाम् ।

दानं पुत्रकलत्राद्यं दानं माता पिता तथा ॥

दान अभिलषित फल देनेवाले वृक्षोंके समान है, दान मनुष्योंके लिये चिन्तामणिके समान है अर्थात् जिस वस्तुका चिन्तन किया जाय, वह (दानसे) तत्काल सुलभ हो जाती है। दान पुत्र, स्त्री आदि है तथा दान ही माता-पिता है।

पापकर्मसमायुक्तं पतन्तं नरके नरम् ।

त्रायते दानमेकं तु पात्रभूते द्विजे कृतम् ॥

नरकमें पड़े हुए पापी व्यक्तिको एकमात्र दान ही बचा सकता है, बशर्ते कि वह दान सत्पात्र ब्राह्मणको दिया गया हो।

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम् ।

सत्यात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥

सभी शास्त्रोंको पढ़कर यही देखा गया है कि न्यायपूर्वक धनका अर्जन करना चाहिये, सत्प्रयत्नसे उसकी वृद्धि करनी चाहिये और उसकी रक्षा भी इसीलिये करनी चाहिये ताकि सत्पात्रमें उसका विनियोग किया जा सके।

यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ।

नापि कीर्त्यै न धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥

जिसका धन न तो दानमें प्रयुक्त होता है, न लोगोंके उपयोगमें आता है, न यशके लिये होता है और न धर्मार्जनमें विनियुक्त होता है, उसका धन निरर्थक है, निष्प्रयोजन है।

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात् ।

स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥

गौरवकी प्राप्ति दानसे होती है, वित्तके संचयसे नहीं। निरन्तर वर्षा आदिका दान करनेसे बादलोंकी स्थिति ऊपर होती है और जलका संग्रह करनेवाले सागरोंकी स्थिति नीचे रहती है।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।

तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ॥

जिस प्रकार उपार्जित की गयी धन-सम्पदाका त्याग ही उसकी रक्षा है, उसी प्रकार तालाब आदिमें भरे हुए जलका प्रवाह ही उसका रक्षण है।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति

दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।

परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-

दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥

दानसे सभी प्राणी वशमें हो जाते हैं, दानसे वैर भी शान्त हो जाते हैं, दानके द्वारा पराया भी बन्धु बन जाता है और दान सभी प्रकारके व्यसनोंको दूर कर देता है।

कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।

ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥

महादानी कर्णने अपनी त्वचाका दान कर दिया, शिबिने अपने शरीरका मांस दानमें दे दिया, जीमूतवाहनने अपने प्राणोंका दान कर दिया, महर्षि दधीचिने अस्थियोंका दान कर दिया—महात्माओंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

द्वारं द्वारमटन्तीह भिक्षुकाः पात्रपाणयः ।

दर्शयन्त्येव लोकानामदातुः फलमीदृशम् ॥

भिक्षाका पात्र हाथमें लिये हुए भिक्षुक लोग दरवाजे-दरवाजे घूमते हुए लोगोंको यही दिखाते हैं कि दान न देनेका ही यह फल है। यदि पहले दान दिया होता तो आज घर-घर भटकते हुए भीख न माँगनी पड़ती, अतः जिसे भीख न माँगनी हो, उसे दान अवश्य देना चाहिये।

स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।

यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम् ॥

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय तथा देवतार्चन नहीं होता, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ हो जाता है।

यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः ।

सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम् ॥

जैसे वेदोंका स्वाध्याय, इन्द्रियोंका संयम और सर्वस्वका त्याग उत्तम है, उसी प्रकार इस संसारमें दान भी अत्यन्त उत्तम माना गया है।*

भगवान् सदाशिवका दानधर्मोपदेश



भगवान् साम्बसदाशिवकी अनन्तानन्त गुणावलिओंमेंसे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उनकी आशुतोषता, दानशीलता, उदारता, अवढरदानीपन तथा भक्तप्रियता आदि गुणोंको मुख्यता दी है। वे कहते हैं कि भगवान् शंकरके समान दानी कहीं नहीं है, वे तो दीनदयाल हैं, देना ही उनके मनको भाता है और माँगनेवाले उन्हें सदा सुहाते हैं—दानी कहूँ संकर-सम नाहीं।

दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ॥
 (विनय-पत्रिका ४)

एक अन्य पदमें तुलसीदासजी कहते हैं—हे शंकर! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं, जिन-जिन लोगोंने आपके सामने हाथ जोड़े, आपने बिना भेद-भावके उन सब लोगोंके दुःख दूर कर दिये—

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।

किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे ॥

(विनय-पत्रिका ८)

संसारमें माँगनेवाला किसीको अच्छा नहीं लगता,

किंतु भगवान् शंकरजी तो ऐसे भोले हैं कि उन्हें याचक ही अच्छे लगते हैं और वे आशुतोष अवढरदानी हैं। जो जो कुछ चाहता है, माँगता है, वह सब सहज ही दे देते हैं और इससे ब्रह्माजीको बड़ा कष्ट होता है, वे श्रीपार्वतीजीके पास जाकर अपना दुःखड़ा सुनाते हुए कहने लगे—हे भवानी! आपके नाथ (शिवजी) बावले-से हैं, सदा देते ही रहते हैं, जिन लोगोंने कभी किसीको दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया, ऐसे लोगोंको भी वे दे डालते हैं, जिससे वेदकी मर्यादा टूटती है। आप बड़ी सयानी हैं, अपने घरकी भलाई तो देखिये, शिवजी तो अनधिकारियोंको भी सब कुछ दे देते हैं, जिन लोगोंके मस्तकपर मैंने सुखका नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति तो उनको भी स्वर्गका स्थान दे देते हैं, जिससे मेरे लिये स्वर्ग सजाते-सजाते नाकों दम आ गया है। दीनता और दुःखको कहीं रहनेकी जगह नहीं रह गयी है, याचकता तो व्याकुल हो उठी है, आपके पति तो मेरी लिखी भाग्यलिपि ही बदल देते हैं, अब मुझसे यह कार्य नहीं होगा, यह कार्य किसी और को सौंपिये। ब्रह्माजीकी ऐसी प्रेमभरी वाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-मन मुदित हुए तथा माता पार्वती मुसकराने लगीं—बावरो रावरो नाह भवानी।

दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी ॥
 निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
 सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ॥
 जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
 तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ॥
 दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
 यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥
 प्रेम-प्रसंसा-बिनय-व्यंगजुत, सुनि विधिकी बर बानी।
 तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ॥

(विनय-पत्रिका ५)

एक महत्त्वकी बात बताते हुए भगवान् कहते हैं कि ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कुपात्र पुरुषोंको भी

(महा० अनु० दान०)



मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दान-मर्यादा

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।

रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥

‘मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्’—अपनी चर्याद्वारा

मर्यादाकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिये तथा लोगोंको उत्तम चरित्रकी शिक्षा प्रदान करनेके लिये भगवान्ने मनुष्यावतार ग्रहण किया। अकारणकरुण भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं और उनका समस्त पावन चरित्र, उनके समस्त कर्म लोकके लिये सदा ही अनुकरणीय हैं, अनुपालनीय हैं—‘रामादिवत् वर्तितव्यम्।’ वे साक्षात् धर्मविग्रह हैं—‘रामो विग्रहवान् धर्मः’ (वा०रा० ३।३७।१३)। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी स्थापना और पूरी निष्ठा एवं श्रद्धाके साथ उनका परिपालन श्रीरामजीकी नित्यकी चर्या थी। आनन्दरामायणमें बताया गया है कि श्रीराम गृहस्थधर्मका पालन करते हुए प्रातःकाल उठकर शौचादिक कृत्यसे निवृत्त होकर पालकीपर चढ़कर सरयूजी स्नानके लिये जाते थे और सवारी आदिको किनारे छोड़कर पैदल बालुकापर चलकर नदीतट तक जाते थे। सरयू नदीको प्रणाम करके नित्यकर्म करते और ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान देकर पवित्र सरयू और ब्राह्मणोंकी सादर पूजा करते थे—

दत्त्वा दानान्यनेकानि गोभूधान्यरसादिभिः ।

सम्पूज्य सरयूं पुण्यां ब्राह्मणान् पूज्य सादरम् ॥

(आ०रा० सा० ५।७०)

तीर्थयात्राके प्रसंगमें भगवान् श्रीरामने सीताजीके साथ धर्मतत्पर रहते हुए एक वर्ष काशीमें निवास किया। गंगाजीके तटपर उन्होंने पत्थरोंका एक घाट बनवाया, जो उन्हींके नामसे रामघाट नामसे आज भी विख्यात है। उन्होंने सीताजीके साथ पंचगंगामें स्नान किया, उस समय उत्तम कार्तिकमास था, एक वर्षतक यहाँ रहकर धर्माचरण किया, दान-पुण्य किया, बादमें तीर्थवासियोंको रत्न, सुवर्ण, वस्त्राभूषण, गौ, सोना-चाँदी आदि दानमें दिया। अन्नदान तथा धान्य आदिके दानसे उन्हें सन्तुष्ट किया। (आ०रा० यात्रा० सर्ग ६) भगवान् श्रीरामजीका जहाँ भी पावन चरित्र आया है, वहीं उनके द्वारा नित्य नियमपूर्वक सत्कार्मानुष्ठान करने तथा दान देनेका विवरण आया है— आवश्यक तः सम्पाद्य कृत्वा शीघ्रैवाध

क्रमात् । हुत्वाग्निहोत्रविधिना कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥ ददौ
दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम् ।’ (आ०रा०वि०
४।१५-१६)

एक बार श्रीरामजीने लक्ष्मणजीके माध्यमसे अपने राज्यमें सभीको धर्माचरण करनेकी आज्ञा करवायी, उसीमें दानधर्मकी भी अनेक बातें आयी हैं, वहाँ कहा गया है—कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े—‘नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं वै कदाचन॥’ (आ०रा०राज्य० २४।८६) देवताओंकी सदा पूजा करनी चाहिये, निरन्तर धर्मकार्य करते रहना चाहिये। लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दिया करें। वसन्तऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पंखेका दान करें। कार्तिकमासमें दीपदान करें। माघमासमें लकड़ियों तथा कम्बलका दान करें। चैत्रमें ताम्बूल तथा केलेके फलका दान करें, वैशाखमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करें। गीता आदि सद्ग्रन्थोंका निरन्तर दान करें—‘दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम्’ (आ०रा० राज्य० २४।१२६)। श्रीरामजी अपनी आज्ञामें बताते हैं कि दान आदि शुभ कर्मोंमें शीघ्रता करनी चाहिये; क्योंकि कालका कोई भरोसा नहीं है, कब आ जाय—‘दाने विलम्बो नो कार्यः’ (आ०रामा०राज्य० २४।१३७)। श्रीरामजीने अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये, जिनमें भूमि, दक्षिणा तथा अनेक दान दिये गये थे। भीष्मपितामहने राजा युधिष्ठिरको बताया—राजन्! दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यज्ञोंमें प्रचुर धन दानमें देकर संसारमें अपने यशकी स्थापना करके अक्षय लोकोंमें गये हैं—

रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु।

स गतो ह्यक्षयाँल्लोकान् यस्य लोके महद् यशः ॥

(महा०अनु० १३७।१४)

वाल्मीकीय रामायणमें बताया गया है कि श्रीरामजीने बहुत-से अश्वमेधयज्ञ किये और उससे दस गुने वाजपेय तथा अग्निष्टोम, गोसव आदि बड़े-बड़े यज्ञ किये। एक गोसवयज्ञकी दक्षिणामें दस हजार गौएँ देनेका विधान है तो फिर इन यज्ञमें कितनी गौएँ देनेमें दोगुना होगा, अर्थात्

दिया—‘विप्रवर! आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकें,

\times \times \times \times

दाताकी उत्तम गति

दानेन तपसा चैव सत्येन च दमेन च।

ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

धनकी एकमात्र गति दान

श्रीकृष्ण बोले—धनका सदुपयोग दानमें ही है।

जिस पुरुषके सभी दिन धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गसे रहित होकर आते और चले जाते हैं, वह मनुष्य लोहारकी भाथीके समान श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है। जिन्होंने दान नहीं किया, हवन नहीं किया तथा तीर्थमें गमन नहीं किया और जिन्होंने ब्राह्मणोंको अन्न, जल, सुवर्ण आदि नहीं दिये, वे बार-बार गरीब, भूखसे व्याकुल, रूखे और हाथमें खप्पर लिये इधर-उधर घूमते हुए देखे जाते हैं। सैकड़ों प्रकारके प्रयत्न एवं श्रमसे कमाये हुए तथा प्राणोंसे भी प्यारे धनका दान ही उसकी एकमात्र गति है। इस धनके अन्य प्रयोग तो विपत्तियाँ ही हैं। जबतक पहलेका पुण्य रहता है, तबतक भोग और दान करनेसे भी धन समाप्त नहीं होता, किंतु पुण्योंके क्षय होनेपर वह बिना दान-भोग किये हुए भी नष्ट हो जाता है—

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।

स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥

यैर्न दत्तं न च हुतं न तीर्थे गमनं कृतम्।

हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम् ॥

दीना निरशना रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः ।

ते दृश्यन्ते महाराज जायमानाः पुनः पुनः ॥

आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः ।

गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥

नोपभोगैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः ।

पूर्वार्जितानामन्यत्र सुकृतानां परिक्षयात् ॥

(भविष्यपु० उत्तर० १५१।८-१२)

निष्फल दिन

भगवान्ने एक बड़े ही महत्त्वकी बात बताते हुए कहा है कि जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन—ये सब कर्म नहीं होते, मनुष्यका वह दिन व्यर्थ है—
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।

(गरुडपु० उत्तर० १३।१३-१४)

निष्फलदान

धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर दानादि सत्कर्मोंकी नित्य अवश्यकरणीयता बताकर भगवान्‌ने उन्हें बताया कि



राजन्! जो दान अश्रद्धा या अपमानके साथ दिया जाता है, जिसे दिखावेके लिये दिया जाता है, जो पाखण्डी या शूद्रके समान आचरण करनेवाले पुरुषको दिया जाता है, जिसे देकर अपने ही मुँहसे उसका बार-बार बखान किया जाता है, जिसे देकर पीछे उसके लिये शोक किया जाता है, वह दान निष्फल होता है—

अश्रद्धयापि यद् दत्तमावमानेन वापि यत्।

दम्भार्थमपि यद् दत्तं यत् पाखण्डितं नृप॥

शूद्राचाराय यद् दत्तं यद् दत्त्वा चानुकीर्तितम् ।

ત્રીન અતિદાન

दानोंमें तीन दान अत्यन्त श्रेष्ठ हैं—गोदान, पृथ्वीदान और विद्यादान। ये दुहने, जोतने और जाननेसे सात कुलतक पवित्र करते हैं—

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।

आसप्तमं पुनन्त्येते दोहवाहनवेदनैः ॥

(भविष्यपु०उत्तर० १५१।१८)

दानका सत्फल

भगवान् बताते हैं कि ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति तो बहुत लोगोंके पास हो सकती है, किंतु उसके साथमें दान देनेकी भावना, शक्ति और उत्साहका होना थोड़ेसे तपका फल नहीं है, जिसने महान् तप किया हो, उसीके पास धन भी रह सकता है और दान देनेकी शक्ति भी—

‘विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥’

(गरुडपू० उत्तर० १४।१७)

दान न देनेका फल

जो दान नहीं देता, वह दरिद्र होता है और दरिद्र होकर उसे विवश होकर पाप करना पड़ता है। पापोंके प्रभावसे वह नरकमें जाता है और नरकसे निकलनेपर फिर दरिद्र तथा पापी ही होता है। इस तरह वह भारी कुचक्रमें फँस जाता है, अतः दान अवश्य देना चाहिये—

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्री

दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।

पापप्रभावान्नरकं प्रयाति

पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ॥

(गरुडपु० उत्तर० १४।१९)

तीन दानोंकी विशेष महिमा

भगवान् कहते हैं कि अग्निका पुत्र सुवर्ण, भगवान् विष्णुकी पुत्री (पृथु-अवतारमें) पृथ्वी तथा सूर्यदेवकी पुत्री गो—इन तीनोंके दानसे त्रिलोकीके दानका फल मिलता है—

अग्नेरपत्यं प्रथमं सूवर्णं

भूर्वैष्णवी सूर्यसूताश्च गावः ।

लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं

यः काञ्चनं गां च महीं प्रदद्यात् ॥

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/chama> + MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

विविध दान

विद्यादान—भगवान् श्रीकृष्णने विद्यादानको विशेष दान बताया है और कहा है कि विद्याके बिना मनुष्य धर्माधर्मकी जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये धर्मात्मा पुरुषको विद्यादानमें सदा तत्पर रहना चाहिये। तीनों लोक, चारों वर्ण, चारों आश्रम और ब्रह्मा आदि सभी देवता विद्यादानमें ही प्रतिष्ठित हैं—

धर्मार्थं न जानाति विद्यया रहितः पुमान्।

तस्मात् सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत् ॥

त्रैलोक्यं चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ॥

(भविष्यपु० उत्तर० १७४। २४-२५)

गृहदान—गृहस्थाश्रम तथा गृहदानकी महिमामें उन्होंने बताया है कि गृहस्थाश्रमसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। गृहदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं है और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पूज्य नहीं है—

न गार्हस्थ्य्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात् परम्।

नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात् परः ॥

(भविष्यपु० उत्त० ३६८।३)

भूमिदान—भूमिदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है और भूमि छीन लेनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। दूसरे दानोंके पुण्य समय पाकर क्षीण हो जाते हैं, किंतु भूमिदानके पुण्यका कभी भी क्षय नहीं होता—

न हि भूमिप्रदानात् वै दानमन्यद् विशिष्यते ।

न चापि भूमिहरणात् पापमन्यद् विशिष्यते ॥

दानान्यन्यानि हीयन्ते कालेन कुरुपुङ्गव ।

भूमिदानस्य पुण्यस्य क्षयो नैवोपपद्यते ॥

(महाभारत)

गोदान—गोमाता तो भगवान्की लीलासहचरी ही हैं, वे सदा गौओंके बीचमें रहा करते हैं और उनकी सेवा किया करते हैं। गौके कल्याणके लिये उनका अवतरण हुआ। उन्होंने अपनी चर्याद्वारा नित्य गोसेवा करनेकी सीख दी है, वे सदा गौओंका दान किया करते थे, उन्होंने गौमें सभी देवताओं, ऋषियों, महर्षियों, पितृदेवताओं, वेदा तथा गंगा आदि नदियोंका प्रतिष्ठा बताया

(महा० अनु० ११३।७)

* दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम् । दश तान्येव विस्तारो गोचरमैतन्महाफलम् ॥ सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् । बालवत्सप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम् ॥ (बृहस्पतिस्मृति ८-९)

‘न भूमिदानाद् देवेन्द्र परं किञ्चिदिति प्रभो।’

(महा० अनु० ६२।५६)

तदनन्तर विस्तारसे बृहस्पतिजीने भूमिदानकी महिमाका ख्यापन किया है। प्रकरणके उपसंहारमें वे कहते हैं—भूमिके समान कोई दान नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, सत्यके समान कोई धर्म नहीं है और दानके समान कोई निधि नहीं है—

नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः।

नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः॥

(महा० अनु० ६२।९२)

तीन अतिदान

गोदान, भूमिदान और विद्यादान—ये तीन दान महादानोंसे भी बड़े अतिदान कहे गये हैं। अतिदान करनेवालेका सब प्रकारके पापोंसे उद्धार हो जाता है, ये दाताको तार देते हैं—

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती॥

तारयन्ति हि दातारं सर्वात् पापादसंशयम्।

(बृहस्पतिस्मृति १८-१९)

भूमिहरणसे महान् पाप

भूमिदान करनेसे जितने महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है, उतने ही पापकी प्राप्ति भूमिहरण करनेवालेको होती है—

‘भूमिदो भूमिहर्ता च नापरं पुण्यपापयोः।’

(बृहस्पतिस्मृति ३०)

भूमिहर्ता यदि करोड़ों गोदान भी करे, तब भी वह शुद्ध नहीं होता—

‘गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति॥’

(बृहस्पतिस्मृति ३९)

गोदानकी तात्त्विक बातें

एक बार राजर्षि मान्धाताके प्रश्न करनेपर गोदानकी तात्त्विक बातें बताते हुए बृहस्पतिजीने कहा कि गोदान करनेवालेको चाहिये कि वह नियमपूर्वक व्रतका पालन करे और एक दिन पूर्व ही ब्राह्मणका सत्कारकर उनसे कहे कि मैं कल आपको एक गोदान करूँगा। फिर गौओंके बीचमें प्रवेशकर निम्न प्रार्थनाकर गौओंकी शरण ले—

गौर्मे माता वृषभः पिता मे

दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा।

प्रपद्यैवं शर्वरीमुख्य गोषु

पुनर्वाणीमुत्सृजेद् गोप्रदाने॥

(महा० अनु० ७६।७)

अर्थात् गौ मेरी माता है। वृषभ (बैल) मेरा पिता है। वे दोनों मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें, गौ ही मेरा आधार है—ऐसा कहकर गौओंकी शरण लें और वह रात्रि गौओंके साथ मौन रहकर बिताकर प्रातःकाल गोदानकालमें ही मौन-भंग करें।

बृहस्पतिजी बताते हैं कि जो गौके निष्क्रयरूपसे उसके बदलेमें मूल्य, वस्त्र अथवा सुवर्ण दान करता है, उसको भी गोदाता ही कहना चाहिये। मूल्य, वस्त्र एवं सुवर्णरूपमें दी जानेवाली गौओंका नाम क्रमशः ऊर्ध्वास्या, भवितव्या और वैष्णवी है। संकल्पके समय इन्हींका उच्चारण करना चाहिये। यथा—गौके बदले द्रव्यका निष्क्रय देनेपर ‘इमां ऊर्ध्वास्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे’ इत्यादि कहे।

आगे बृहस्पतिजी मान्धाताको बताते हैं कि साक्षात् गौका दान लेकर जब ब्राह्मण अपने घरकी ओर जाने लगता है, उस समय उसके आठ पग जाते-जाते ही दाताको अपने दानका फल मिल जाता है—

‘गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे॥’

(महा० अनु० ७६।१७)

अन्नदानकी महिमा

एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पतिजीसे पूछा—ब्रह्मन्! मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे सद्गतिको प्राप्त होते हैं तो इसपर बृहस्पतिजीने बताया—अज्ञानवश अधर्म बन जानेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये और मनको वशमें रखकर पुनः पाप न करे। मनुष्यका मन ज्यों-ज्यों पापकर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, यदि सावधान हो ब्राह्मणोंको नानाविध दान करे तो दाताकी उत्तम गति होती है, आगे फिर विविध दानोंका निरूपण करते हुए उन्होंने अन्नदानको ही सर्वश्रेष्ठ बताया—

‘सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।’

(महा० अनु० ११२।१०)

अन्नदान करनेवाले वास्तवमें प्राणदान करनेवाले हैं, उन्हीं लोगोंसे सनातन धर्मकी वृद्धि होती है—

(बृहस्पतिस्मृति ६२—६४)

(वा०रा०उत्तर० ७८।२३)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

राजा श्वेतकी दुःखभरी बात सुनकर उनका उद्धार करनेकी दृष्टिसे अगस्त्यजीने वह दान स्वीकार कर लिया और दानका यह प्रभाव हुआ कि दान ग्रहण करते ही राजा श्वेतका वह पूर्व शरीर (शव) अदृश्य हो गया और राजर्षि श्वेत परमानन्दसे तृप्त हो प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मलोक चले गये—

मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ।

मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह ॥

प्रणष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा ।

तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम् ॥

(वा०रा०उत्तर० ७८। २७-२८)

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने उक्त आख्यानके माध्यमसे यह बताया है कि प्रतिदिन यथाशक्ति अवश्य दान करना चाहिये। अन्य सभी कर्म करो, किंतु दान न करो तो उसका दुष्परिणाम यह होता है कि दिव्य लोक प्राप्त होनेपर भी भूख-प्यास पीछा नहीं छोड़ती, यहाँतक कि उस व्यक्तिको अपने ही शवका भक्षण करना पड़ता है, ऐसी स्थिति न आने पाये, अतः दान अवश्य करना चाहिये।

महर्षिने अपने महाप्रबन्धमें यत्र-तत्र दान-धर्मका उल्लेख किया है। दशरथ आदि राजाओंने बड़े-बड़े यज्ञोंपर अनेक प्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया, दीनों-अनाथोंको यथेच्छ सामग्री प्रदान की। महाराज दशरथजीने जब अश्वमेध यज्ञ किया तो ऋत्विजोंको सारी पृथ्वी दानमें दे दी—

‘ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः ॥’

(वा०रा०बा० १४।४५)

इसपर ऋत्विज बोले—महाराज ! आप अकेले पृथ्वीकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, हममें इसके पालनकी शक्ति नहीं है, अतः भूमिसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। आप हमें भूमिके निष्क्रयके रूपमें कुछ दीजिये। तब महाराज दशरथने दस लाख गौएँ, दस करोड़ स्वर्णमुद्रा और उससे चौगुनी रजतमुद्रा अर्पित की, इसके साथ ही उन्होंने अपना सर्वस्व ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया। जब उनके पास कुछ भी नहीं बचा तो एक दरिद्र ब्राह्मण धनकी याचनाहेतु उनके पास आये तो उन्होंने हाथका उत्तम आभूषण उतारकर उन्हें दानमें दिया—

‘दरिद्राय द्विजायाथ हस्ताभरणमुत्तमम् ॥’

(वा०रा०बा०१४।५४)

ऐसे ही पुत्रेष्टि यज्ञके अवसरपर दशरथजीने ब्राह्मणोंको प्रभूत धन और सहस्रों गोधन प्रदान किये—

‘ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः ॥’

(वा०रा०बा० १८।२०)

श्रीराम आदिके विवाहके पूर्व राजा दशरथने प्रत्येक पुत्रके मंगलके लिये एक-एक लाख गौएँ (कुल चार लाख) ब्राह्मणोंको दानमें दीं, उन सबके सींग सोनेसे मढ़े हुए थे, सबके साथ बछड़े थे और काँसेके दुग्धपात्र थे। (वा०रा०बा० ७२।२२—२४) श्रीराम जब वन जाने लगे तो उन्होंने दान देकर सबको तृप्त कर दिया और त्रिजट नामक एक ब्राह्मणको तो यह कहा कि आप अपना डण्डा जहाँतक फेंक सकें वहाँ तकका गोधन आपका होगा, फिर वैसा ही हुआ भी। ऐसे ही श्रीरामजीका नैमिषारण्यमें अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ तो उसमें दान-धर्मकी ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि चिरजीवी आमन्त्रित मुनियोंको कहना पड़ा कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरुणके यहाँ भी नहीं हुआ, हमें किसी ऐसे यज्ञका स्मरण नहीं, जिसमें दानका ऐसा उदार स्वरूप दिखायी दिया हो और सम्पूर्ण यज्ञ दानराशिसे पूर्णतः अलंकृत रहा हो—

‘नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम्।’

(वा०रा०उत्तर० ९२।१५)

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने अपने ग्रन्थमें यत्र-तत्र दानके अवसरोंपर महीनय उदारताका उल्लेख किया है और देश, काल, पात्र, श्रद्धा, द्रव्यशुद्धि, दाता, प्रति-ग्रहीता आदिपर सूक्ष्म विचार किया है। महर्षि वाल्मीकिजीकी दृष्टि अत्यन्त दूरदर्शी और धर्मानुगामिनी रही है। धर्मकी प्रतिष्ठा बनी रहे, सदाचारकी मर्यादा बनी रहे, सभी अपने वर्ण एवं आश्रम-धर्मोंका ठीक-ठीक पालन करें, दानादि सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते रहें और भगवान्‌के मर्यादित क्रिया-कलापोंका अनुपालन करें—यही चाहते थे। महर्षि वाल्मीकि और रामराज्यमें यह सब हुआ भी। वाल्मीकीय रामायण साक्षात् वेदवाणी है। महर्षिने अपने दिव्य ज्ञानके प्रभावसे श्रीरामावतारसे पहले ही रामायणकी रचना कर दी थी। ऐसे पवित्रकीर्ति उन वाल्मीकिजीको बार-बार प्रणाम है—

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।

आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥

राजर्षि मनुका दानविधान

भारतीय सनातन संविधानके उद्भावक राजर्षि मनु और देवी शतरूपाका सदाचारमय जीवन सभी मानवोंके लिये सर्वथा अनुकरणीय है। ब्रह्माजी स्वयम्भू कहलाते हैं, उन्हींसे प्रकट होनेसे ये स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। चौदह मनुओंमें ये आदिमनु हैं। ब्रह्माजीने जब सृष्टि बनायी तो

रहता है, इसका निरूपण करते हुए बताया कि सत्ययुगमें धर्म अपने चारों चरणों (तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान)–से स्थित रहता है, किंतु चारों चरणोंमेंसे तपका प्राधान्य रहता है, त्रेतामें ज्ञानका प्राधान्य रहता है, द्वापरमें यज्ञकी प्रधानता रहती है और कलियुगमें महर्षियोंने दानको ही प्रधान धर्म कहा है—

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

(मनु० १।८६)

इस प्रकार मनुजीने कलियुगमें अन्य साधनोंकी सहज साध्यता न होनेसे दानको ही कल्याणप्राप्तिका श्रेष्ठ साधन बताया है।

दानका स्वरूप

राजर्षि मनु विधिज्ञ हैं और अत्यन्त दयालु भी हैं, उन्होंने कलियुगके लिये दानको सहज साधन तो बता दिया, किंतु वे कहते हैं कि दान तभी सफल होता है, तभी वह धर्मका साधन बनता है जबकि दान उचित देश-कालमें, योग्यपात्रमें श्रद्धाभक्तिपूर्वक विधि-विधानसे दिया जाय—

देशकालविधानेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्।

पात्रे प्रदीयते यत्तु तद्धर्मस्य प्रसाधनम्॥

(मनु० ७।८६।[८])

दानमें सत्पात्रकी महत्ता

सत्पात्रमें दिये दानकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं कि विद्या एवं तपसे युक्त ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक थोड़ा या बहुत; जितना भी दिया जाय, वह परलोकमें उसे प्राप्त होता है—

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धानतयैव च।

अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य फलमश्नुते॥

(मनु० ७।८६)

मनुजी सदाचारी वेदज्ञ विद्वान्को दिये गये दानका फल अनन्त बताते हैं—‘अनन्तं वेदपारगे’ (मनु० ७।८५)।

चित्र सं० महाभारत शान्तिपर्व,

पृ० २५१

प्रजापालनके लिये इन्हें ही राजा बनाया (महा०शान्ति० ६७।२१-२२), इसीलिये ये आदिराज कहलाते हैं। समस्त मानवोंका पालन करनेके कारण ये पिता भी कहलाते हैं—

‘मनुष्यिता’ (ऋक्० १।८०।१६)।

इनमें ज्ञान, तप, सत्य, सदाचार, यम-नियम, ध्यान-समाधिकी जैसी प्रतिष्ठा थी, वैसी ही अन्तःकरणकी निर्मलता और भगवद्भक्तिकी प्रतिष्ठा भी थी। ये नारायणके अनन्य भक्त थे। आदिराज होनेसे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने तथा धर्माचरणका स्वरूप स्पष्ट करनेके लिये इन्होंने वेदसम्मत एक शास्त्रकी उद्भावा की, जो इन्हींके नामसे मानवधर्मशास्त्र या मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें बारह अध्याय हैं। इसके पहले ही अध्यायमें मनुजीने सत्य आदि चारों युगोंमें चतुष्पाद् धर्म किस रूपमें प्रतिष्ठित

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि विद्या तथा तपसे समृद्ध ब्राह्मणको दिया गया दान महान् दुःखों तथा महान् पापोंसे छुटकारा दिला देता है—‘निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात्’ (मनु० ३।१८)।

विधिपूर्वक दान

मनुजी कहते हैं कि दानदाताको विधिपूर्वक देना चाहिये और प्रतिग्रहीताको भी विधिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। दानमें संकल्पकी आवश्यकता है। पहले दानदातासे दान लेनेकी स्वीकारोक्ति ग्रहण करनी चाहिये, फिर उसका वरण करना चाहिये, देयद्रव्यका पूजन करना चाहिये, दानग्रहणके बाद प्रतिग्रहीताको 'स्वस्ति' बोलना चाहिये। दाता पूर्वमुख तथा ग्रहीता उत्तरमुँह बैठे। इत्यादि विधियाँ शास्त्रोंमें विस्तारसे बतायी गयी हैं। उनका पालन अवश्य करना चाहिये तभी दानका पूर्ण फल प्राप्त होता है अन्यथा देश, काल, पात्रका ध्यान रखे बिना अविधिपूर्वक दिया गया दान तथा अविधिसे ग्रहण किया दान अनर्थकारी होता है—

असम्यक् चैव यदुत्तमसम्यक् च प्रतिग्रहः ।

उभयं स्यादनर्थाय दातुरादातुरेव च ॥

(महा०शान्ति० ३६।३९)

अपात्रको दिया गया दान निष्फल

अपात्रको दिये गये दान आदिके विषयमें मनुजी कहते हैं कि जैसे ऊसर भूमिमें बीज बोनेसे कोई फल बोनेवालेको नहीं मिलता, ऐसे ही विद्याविहीन अथवा अपात्र ब्राह्मणको दान देनेसे दाताको कोई फल प्राप्त नहीं होता—‘न दाता लभते फलम्’ (मनु० ३।१४२)।

दानमें न्यायोपार्जित द्रव्य तथा श्रद्धाकी महिमा

मनुजी बताते हैं कि दानमें जैसे सत्पात्रका विचार है, वैसे ही द्रव्यशुद्धि तथा श्रद्धाकी भी महिमा है। वे कहते हैं— इष्टापूर्तकर्म नित्यकर्म है। इष्ट कहते हैं; यज्ञादि दान-धर्म-सम्बन्धी धर्माचरणके कार्योंको और पूर्त कहते हैं लोकोपकारकी दृष्टिसे किये गये कर्म यथा—कुआँ, बावली, तालाब, धर्मशाला, औषधालय-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि। इन्हें आलस्य छोड़कर अवश्य करना चाहिये अर्थात् दानधर्म आदि कार्योंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। ये नित्य करणीय पवित्र कृत्य हैं, किंतु ये तभी अक्षय फलदायी होते हैं, जब न्यायोपाजित द्रव्यसे इनका अनुष्ठान किया जाय, प्रसन्न मनसे किया जाय

और श्रद्धापूर्वक किया जाय। अन्यायसे प्राप्त द्रव्यसे किया गया सत्कर्म फलदायी नहीं होता—

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।

श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ।

(मनु० ४। २२६-२२७)

विविध दानोंके विविध फल

राजर्षि मनु दानके स्वरूप तथा उसकी अवश्यकरणीयताको बतानेके अनन्तर किस वस्तुके दानका क्या फल होता है, इसका संक्षेपमें निरूपण करते हैं ताकि लोग दान अवश्य करें, चाहे फलप्राप्तिकी अभिलाषासे ही लोगोंमें दानकी प्रवृत्ति जाग्रत् हो और वे दानधर्ममें प्रवृत्त हों। वे कहते हैं कि जल ही प्राणीका जीवन है, अतः जलदान करनेसे दाता भूख और प्यासकी पीड़ासे निवृत्त होकर सदा सन्तुष्ट रहता है। अन्नका दान करनेवाला अक्षय सुख प्राप्त करता है, तिलोंका दान करनेवाला मनोभिलषित सन्तति प्राप्त करता है और दीपदान करनेवाला उत्तम नेत्रज्योति प्राप्त करता है—

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।

तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदशचक्षुरुत्तमम् ॥

(मनु० ४।२२९)

भूमिदान करनेवाला भूमिका आधिपत्य, सुवर्णदान करनेवाला दीर्घायु, गृहदान करनेवाला उत्तम भवन तथा चाँदीका दान करनेवाला उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न रूप एवं सौन्दर्य प्राप्त करता है—

भूमिदो भूमिमाज्जोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।

गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥

(मनु० ४।२३०)

वस्त्रका दान करनेवाला चन्द्रलोक, अश्वका दान करनेवाला अश्विनीकुमारोंके लोक, वृषभ (बैल)-का दान करनेवाला अखण्ड ऐश्वर्य तथा गोदान करनेवाला प्रकाशमान सूर्यलोकको प्राप्त करता है—

वासोदशचन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।

अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥

(मनु० ४।२३१)

यान (सवारी) तथा शय्याका दान करनेवाला सुलक्षणा
 माया (पत्नी), प्राणियोंका अभयदान देनेवाला अर्थात्

[प्रेषक—पं० श्रीरामायणप्रसादजी गौतम]



(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

राजा बलि तमाम लोक-लोकान्तरोंको जीतकर राजा इन्द्र हो गया। लोग पहले सौ अश्वमेध करते हैं तब इन्द्र होते हैं, परंतु राजा बलि पहले इन्द्र हो गया, फिर सौ अश्वमेधकी उसने तैयारी की।

कहते हैं, बलि पूर्वजन्मका कोई जुआरी था। एक दिन जुएमें कहीं कुछ पैसे पाये। उन पैसोंकी उसने एक माला खरीदी अपनी प्रियतमा वेश्याके लिये। माला हाथमें लिये वह जा रहा था। किसी पाषाणसे ठोकर खाकर गिर पड़ा। मूर्च्छित हो गया। कुछ देरमें होश हुआ तो उसने अनुभव किया, 'अब मैं मर जाऊँगा।' सोचने लगा—मेरी इस मालाका क्या होगा? मेरी यह बहुत खूबसूरत माला मेरी प्रियतमातक तो पहुँची नहीं। हाँ ठीक है, कभी मैंने महात्माके मुखसे सुन रखा है, वस्तु 'शिवार्पण' कर देनेसे बहुत लाभ होता है। 'शिवार्पण' कर देनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा। न होगा तो मर तो रहा ही हूँ, माला तो बेकार जा ही रही है। इस दृष्टिसे जुआरीने माला शिवजीको अर्पण कर दी।

जुआरी माला 'शिवार्पण' करके मर गया। यमराजके दूत पकड़कर ले गये। यमराजके सामने खड़ा किया। उन्होंने चित्रगुप्तसे कहा—'देखो, इसका बहीखाता।'

चित्रगुप्तने कहा—‘यह तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरका पापी है। बस, अभी-अभी थोड़ी देर पहले द्यूतमें पैसा पाकर इसने माला खरीदी थी वेश्याके लिये। ठोकर खाकर रास्तेमें गिर पड़ा। इसने देखा कि माला अब निरर्थक हो रही है तो शिवार्पण कर दिया। बस, यही एक इसका पुण्य है।’

धर्मराज जुआरीसे बोले—‘भाई! तुम पहले पुण्यका फल भोगोगे या पापका?’

जुआरीने कहा—पाप तो जन्म-जन्मान्तरके हैं, उनको भोगने लगेंगे, तो उनके अन्तका कुछ पता नहीं, इसलिये पहले पुण्यका फल चाहिये।

यमराजने कहा—‘तुम दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकके मालिक बने।’

जुआरी दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका मालिक बना, इन्द्रासनपर विराजमान हुआ। अप्सराएँ गुणगान करने आयीं, गन्धर्व गुणगान करने आये। उन गन्धर्वोंमें नारद भी थे। नारदको हँसी आ गयी, हँस दिये।

जुआरी बोला—बताओ, क्यों हँसते हो?

नारदजीने कहा—हमको श्लोक याद आता है, इसको पूर्वमीमांसक भी मानते हैं और नैयायिक भी मानते हैं—

सन्दिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्यसञ्चयः ।

नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्ति को हतः ॥

(श्लोकवार्तिक, कुमारिलभट्ट)

अर्थात् परलोकमें संशय हो तो भी पुण्यका संचय करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो आस्तिक का कोई नुकसान नहीं है। कहीं परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक मारा जायगा।

नारदजीने कहा—‘जुआरी! तू जन्म (जीवन)–भर जुआ खेलता था। जुएमें कोई निश्चित आमदनी तो होती नहीं—‘लग गया तीर नहीं तो तुक्का।’ तूने यही सोचा कि ‘शिवार्पण’ करनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा, न होगा तो मर तो रहे ही हैं, माला तो बेकार जा ही रही है, शिवको अर्पण कर दें। इस दृष्टिसे तूने शिवार्पण किया और उसका परिणाम यह हुआ कि दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका स्वामी है। इसलिये मझे हँसी आयी।’

जुआरी सिंहासनसे उतरा और नारदजीसे बोला—
‘गुरुदेव! अब हम सारे इन्द्रासनपर तुलसीदल रख देते हैं।’
किसी ब्राह्मणको बुलाया और चिन्तामणिका दान कर
दिया। किसी ब्राह्मणको बुलाया और नन्दनवनका दान कर
दिया। किसी ब्राह्मणको बुलाकर ऐरावतका दान कर दिया,
अमृतके कण्ड-के-कण्डका दान कर दिया। इस तरह

जीवोंपर श्रीभगवान्की अहैतुकी कृपा सदा ही रहती है।
जीव केवल अपने त्याग, तपस्या आदि साधनोंके बलपर इस

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते

स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।

(श्रीमद्भा० ८।२२।२०)

अर्थात् 'प्रभो! आपने अपनी क्रीडाके लिये ही इस

सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है, पर यहाँ जो कुबुद्धि हैं, वे आपकी इस सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व अंगीकार करते हैं।' वस्तुतः सारा विश्व भगवान् का है; अतः सर्वस्व समर्पण ही मनुष्यका परम कर्तव्य है। इसमें भी भगवत्कृपा ही कारण होती है।

श्रीप्रह्लादजीने कहा कि 'प्रभो! लोग कहते हैं कि भगवान् देवताओंका पक्षपात करनेवाले हैं, किंतु आज यह बात विदित हो गयी कि तत्त्वतः आप असुरोंके भी पक्षपाती हैं, उनपर भी आपकी अजस्र कृपा रहती है। तभी तो आप बलिके घरमें उनके सभी द्वारोंपर चक्र लिये हुए खड़े दिखायी पड़ते हैं। यह कैसी विशेषता है कि आप किसी देवताके यहाँ चक्र लिये खड़े नहीं दीखते, पर बलिके यहाँ पहरा दे रहे हैं।'

यह महान् आश्चर्य है कि भगवान् वामनरूपमें दानवेन्द्र बलिके सभी द्वारोंपर खड़े दीखते हैं। बलिकी आँखें जहाँ जाती हैं, वहीं श्रीभगवान् दिखायी पड़ते हैं। बलिका जीवन परम धन्य है। वस्तुतः यह सब बलिके दानकी महिमा है।

दानका फल

भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्र सुखितोऽनन्दः ॥

तोयदाता सूरूपः स्यात् पुष्टश्चान्नप्रदो भवेत् । प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदातार्यमलोकभाक् ॥

स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्याच्च सुप्रजः । वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशो वस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक् ॥

हयप्रदो दिव्यदेहो लक्ष्मीवान् वृषभप्रदः । सुभार्यः शिबिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च ॥

श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति । स्वर्गिणौ तावुभौ स्यातां पततोऽश्रद्धया त्वधः ॥

भूमिदान करनेवाला मण्डलेश्वर होता है, अन्नदाता सर्वत्र सुखी होता है और जल देनेवाला सुन्दर रूप पाता है। भोजन देनेवाला हृष्ट-पुष्ट होता है। दीप देनेवाला निर्मल नेत्रसे युक्त होता है। गोदान देनेवाला सूर्यलोकका भागी होता है, सुवर्ण देनेवाला दीर्घायु और तिल देनेवाला उत्तम प्रजासे युक्त होता है। घर देनेवाला बहुत ऊँचे महलोंका मालिक होता है। वस्त्र देनेवाला चन्द्रलोकमें जाता है। घोड़ा देनेवाला दिव्य शरीरसे युक्त होता है। बैल देनेवाला लक्ष्मीवान् होता है। पालकी देनेवाला सुन्दर स्त्री पाता है। उत्तम पलंग देनेवालेको भी यही फल मिलता है। जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं। तथा अश्रद्धासे देनेका अश्रद्धासे ग्रहण होता है।

सनातन हिन्दू संस्कृतिमें दान-महिमा

[ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश]

एक बारकी बात है, भक्तिरसमय श्रीवृन्दावनधाममें यमुना नदीके तटपर ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबा दानके स्वरूपपर अपना अनुभव प्रस्तुत कर रहे थे। उन्होंने बताया—

देनेका भाव 'दान' कहा जाता है। दानद्वारा ही मनुष्यका अन्तःकरण पवित्र होता है और पवित्र अन्तःकरण होनेपर ही भगवान्की प्राप्ति होती है। दानका अर्थ केवल धनका ही दान नहीं है, बल्कि दानका अर्थ भगवान्के प्रति मन, बुद्धि, श्रद्धा और विश्वास अर्पित करना भी है। सब कुछ भगवान्ने ही हमें दिया है, हमारा अपना कुछ नहीं है। भगवान्द्वारा दी हुई वस्तु भगवान्को ही देना दानका सच्चा स्वरूप है।

दान आत्मकल्याणका महत्त्वपूर्ण साधन है। भगवान्ने गीता (१८।५) में कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

अर्थात् यज्ञ, दान और तपस्वरूप कर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। ये मनीषियोंको पवित्र करते हैं। दान करनेकी सामग्रियाँ तथा शक्तियाँ अनन्त रूपोंमें भगवान्ने हमें दी हैं। उनका सदुपयोग करनेकी विवेकशक्ति भी उन्होंने हमें प्रदान की है। लेकिन उधर ध्यान नहीं देनेके कारण उस नित्यप्रभुके नित्ययोगका अनुभव हमें नहीं होता। यदि प्रभुको अपने हृदयमें देखना चाहते हो तो सत्संग, स्वाध्याय, नाम-कीर्तन तथा प्रभुकी लीलामें अपने मन एवं बुद्धिको जोड़ दो, यही जीवनदान सच्चा पारमार्थिक दान है। भगवान्ने भी इसी जीवनदानके विषयमें कहा है—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गीता १२।८)

नाम-साधनामें लगना श्रद्धा और विश्वासका दान है। दान वास्तवमें भगवान्के प्रति श्रद्धा और विश्वासरूप आत्मसमर्पण है, जिसकी अनुभूति प्रकट करते हुए तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।

राम कृपा बिनु सपनेहुं जीव न लह बिश्रामु॥

(रा०च०मा० ७।१००)

भगवान्की कृपा बिना न तो उनमें विश्वास होता है और न उनका भजन ही होता है। भजन करना भक्तका आत्मसमर्पण-भाव है। आत्म-समर्पण-भावके बिना भगवान्का अनुभव अपने हृदयमें नहीं होता है। इस प्रकार आत्मसमर्पण-रूप दानकी महिमा अपार है। यह मानव-शरीर भगवान्की भक्ति-साधनामें लगनेके लिये ही प्राप्त हुआ है, अतः इसे भगवान्में लगाना ही जीवनमें सच्चा दान है। दानकी महिमा हृदयसे ही समझी जाती है।

आत्मभाव तथा ईश्वरभावमें रहनेवाले मनुष्य देवमानव कहे जाते हैं तथा शरीर एवं संसारके भावमें रहनेवाले मनुष्य असुरमानव कहे जाते हैं। देवमानवकी प्रवृत्ति दैवीप्रवृत्ति और असुरमानवकी प्रवृत्ति आसुरीप्रवृत्ति कही जाती है। सब प्रकारके धन भगवान्के ही दिये हुए हैं, ऐसा समझकर मानव भगवद्भावसे जो दान देता है, वह सर्वश्रेष्ठ दान है। दानकी क्रिया शास्त्रविहित शुभकर्म है, लेकिन इसका सम्बन्ध भगवान्के साथ न होनेपर केवल कर्ममात्र ही रह जाता है। अज्ञान और स्वार्थभाव रहनेसे दानद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि अर्थात् आत्मशुद्धि नहीं हो पाती।

शरीर और जीव—दोनोंके मालिक भगवान् हैं, अतः भगवान्की भावनासे ही दान करना सर्वोत्तम है।

मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। मनुष्यको प्रारब्धसे प्राप्त और दान आदिसे बचे हुए धनका ही उपयोग अपने जीवनमें करना चाहिये। आत्मभाव ही भगवान्का भाव है। सबमें भगवान् देखते हुए नित्य दान करना चाहिये।

सात्त्विक दान करनेसे आत्मसाक्षात्कार होता है। दान करनेसे दाताका मन पवित्र बनता है और दुर्गुण एवं दुराचारकी मात्रा घटती ही है। मनुस्मृतिमें बताया गया है कि इस कलियुगमें धर्मके चार चरणोंमें केवल एक धर्म

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

‘दान’ ही बच गया है—

‘दानमेक कलौ युगे।’ तुलसीदासजीने इसीका भाव बताते हुए कहा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण॥

(रा०च०मा० ७।१०३ख)

अर्थात् किसी भी प्रकारसे दान दिया जाय तो दाताका कल्याण ही होता है। इसलिये मनुष्यको दान देनेका स्वभाव अवश्य बनाना चाहिये। दान देना शुभ कर्म है और इससे शुभ संस्कार बनते हैं। जिससे अन्तःकरण निर्मल बनता है, उसे संस्कार कहते हैं।

पूज्य बाबाने दानके सम्बन्धमें विशेष बात बताते हुए कहा—‘बच्चा! भक्तमें एक भगवद्भावनाकी विशेषता रहती है। वह भगवद्भावनासे दान देकर भगवान्को प्रसन्न करता है। कलियुगमें नाम-संकीर्तनकी विशेष महिमा है। भक्त भगवान्का नाम-संकीर्तन करते हुए ही कोई वस्तु दूसरोंको देता है। भगवान्की भावनासे दान करनेपर भक्त गुणातीत बन जाता है और उसे भगवान्के समग्र रूपका अनुभव

हो जाता है जो मानव-जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। दानका सच्चा रूप आत्म-समर्पण है। अतः भक्तिभावसे दान करना उचित है। दानका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। भगवत्प्राप्तिमें देहासक्ति तथा कर्मफलासक्ति मिट जाती है।

तुलसीदासजीने दानकी भावनाको धर्म तथा भक्तिमणि,
दोनों कहा है। उनकी वाणी देखी जाय—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥

(रा०च०मा० ७।४१।१, ७।१२०।१०-११)

छोटे-से-छोटा और साधारण-से-साधारण कर्म भी यदि भगवान्‌के उद्देश्यसे निष्कामभावपूर्वक किया जाता है तो उससे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌की प्राप्तिमें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, बल्कि श्रद्धाकी विशेष महत्ता है। आध्यात्मिक संस्कृतिमें साधककी श्रद्धाका विशेष मूल्य है। अतः दान ईश्वर-भावसे करना चाहिये। दानद्वारा भगवत्प्राप्ति होती है, यह दानकी अपार महिमा है।

[प्रेषक—श्रीरामानन्दजी चौरासिया 'श्रीसन्तजी']

दानकी महिमा

(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल')

दान ही को मान होत, दान ही महान होत,
दान ही से नम्रता, विनम्रता फरत है।
दान से अभाव जात, वैरी दुर्भाव जात,
दान की सुबेलि ही से सुमन झरत है॥
दान ही से ज्ञान होत दान ही से ध्यान होत,
दान ही से द्वेष दम्भ जियत जरत है।
दान ही से हारे देव दान से विजय स्वमेव,
दान द्वारे भोर होत ध्वजा फहरत है॥ १ ॥
राखी दान मरजाद डोम के बिकानो हाथ,
मृत पुत्र देख हरीचंद नहीं गीलो है।
करं करं चीरो अरकसिया चला के पुत्र,
मोरध्वज दृढ़, दान हित गर्वीलो है॥
साढ़े तीन पग भूमि बलि दियो बामन को,
शेष पै नपायो तन अलग हठीलो है।
दान-दानी मारग को कहाँ लौं बखान करों,
सुनत में सुदो चलिबे में पथरीलो है॥ २ ॥

दानकी रूपरेखा

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)

सामवेदमें एक सेतुगान है। सेतुगान उसे कहते हैं, जो सेतुका काम करे। जीवनमें चार चहारदीवारियाँ हैं, जिनसे तुम बँधे हुए हो। वे चहारदीवारियाँ क्या हैं? वे हैं—अश्रद्धा, असत्य, लोभ और क्रोध। जेलखानेमें जैसे चहारदीवारी होती है—उसीकी तरह इनका वर्णन है। ये तुमको आगे बढ़ने नहीं देतीं।

अश्रद्धया श्रद्धां असत्येन सत्यं अक्रोधेन क्रोधं दानेन अदानम्।
सेतुं स्तर दुस्तरान् सेतुं स्तर दुस्तरान्।

श्रद्धासे अश्रद्धाकी चहारदीवारी पार करो। सत्यसे असत्यकी चहारदीवारी पार करो। अक्रोधसे क्रोधकी चहारदीवारी पार करो और दानसे लोभकी चहारदीवारी पार करो।

वेदके एक मन्त्रमें आता है कि एक बार देवता, दैत्य और मनुष्य तीनों प्रजापतिके पास गये और उन्होंने कहा कि आप बड़े-बूढ़े हैं—हमारे पिता-पितामह हैं—हमें कुछ उपदेश कीजिये। ब्रह्माजीने तीन बार कहा—द-द-द। पहले बहुत सरल और बहुत विस्तारसे उपदेश नहीं किया जाता था। वैदिक रीति यही थी कि बात संक्षेपमें कह दी जाय। श्रोता विचार करके और अपनी बुद्धिका प्रयोग करके किसी विषयको समझे तो उसकी बुद्धि बढ़ेगी। यदि उपदेश करनेवाला ही सरल करके खोलकर उसको बता देगा तो श्रोताकी बुद्धि नहीं बढ़ेगी। सरल रूपसे समझानेपर काम तो वह कर सकेगा, पर श्रोताकी समझदारी नहीं बढ़ेगी। पहलेके बड़े-बूढ़ोंको यह ध्यानमें रखना पड़ता था कि हमारे बच्चोंकी समझ बढ़े और वे संकेतकी भाषा भी समझें। इसलिये ब्रह्माजीने दैत्योंको बुलाया और पूछा कि मेरे प्यारे बच्चो! तुमने मेरे 'द' का क्या अर्थ समझा? उन्होंने कहा कि समझ गये महाराज! अच्छी तरह समझ गये। हमलोग अपने हृदयमें बहुत क्रोध रखते हैं, द्वेष रखते हैं, हमारे अन्दर यह दोष है, यह दुर्गुण है, आपने जो 'द' का उच्चारण किया, उसका अर्थ है 'दया'। आपने हमारे अनुरूप उपदेश किया है कि हम दया करें, क्रूरता न करें। इसके बाद प्रजापतिने देवताओंको बुलाया और उनसे पूछा कि देवताओ! तुमने मेरी बात

समझी? हाँ, समझी। खूब अच्छी तरह समझी। हमलोग बड़े कामुक हैं, भोग-परायण हैं, इसलिये आपने हमारे लिये उपदेश दिया है कि इन्द्रियोंका दमन करो, दमन करो। अपनी इन्द्रियोंको जिनमें स्वच्छन्द, उच्छृंखल, बेधड़क, बेरोक-टोककी प्रवृत्ति है, उसपर काबू करो। अब ब्रह्माजीने मनुष्योंको बुलाया और उनसे पूछा कि तुम हमारे उपदेशको ठीक-ठीक समझ गये। हाँ महाराज, समझ गये। आपने यह कहा कि हमलोग बड़े लोभी हैं। इतना संग्रह न तो कोई देवता करता है और न कोई दैत्य करता है। यह जो हमारे जीवनमें लोभ है, इसके लिये आपने 'द' शब्दका उच्चारण करके बताया कि तुमलोग दान करो। ब्रह्माजीने तीनोंकी समझका समर्थन किया। उन्होंने काम-निवारणके लिये उपदेश दिया देवताओंको, क्रोध-निवारणके लिये उपदेश दिया दैत्योंको और लोभ-निवारणके लिये उपदेश दिया मनुष्योंको। इसीलिये मनुष्योंके जीवनमें जो दान है, यह उनका विशेष धर्म है।

मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह स्वयं खा-पीकर सन्तोष न करे, बल्कि दूसरोंको खिला-पिलाकर सन्तोष करे, नहीं तो कितना भी इकट्ठा कर लो, अन्तमें उसको छोड़कर जाना पड़ता है। इसलिये श्रुति कहती है कि 'तस्मात् दानं परमं वदन्ति'—दान परमधर्म है। यदि दाता बुद्धिमान् हो तो दान करके अपनेको पवित्र कर सकता है। जैसे लोग अपनेको यज्ञसे पवित्र करते हैं, जलसे पवित्र करते हैं, ध्यानसे पवित्र करते हैं, ज्ञानसे पवित्र करते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् दाताको दान परम पावन बना देता है। 'पावनानि मनीषिणाम्' का अर्थ है कि 'मनीषिणां पावनानि न तु मूर्खाणाम्।' ऐसा क्यों? इसलिये कि मूर्खको दान अभिमानी बना देता है। पावन माने वह जो स्वयं पवित्र हो और दूसरोंको भी पवित्र कर दे।

इस प्रकार दानमें बड़ा सामर्थ्य है; किंतु दानके सम्बन्धमें लोगोंको बहुत कम जानकारी है। जो देते हैं, उनको भी बहुत कम जानकारी है। लोग दान करते हैं—यह ठीक है। परंतु यह समझना चाहिये कि दान कैसे

करना चाहिये, क्यों करना चाहिये और उसके भीतर क्या होना चाहिये ? वकालत करना है तो किसी बड़े वकीलके नीचे रहकर सीखना पड़ता है और डॉक्टरी करनी हो तो डॉक्टरके नीचे रहकर सीखना पड़ता है, उसी तरह पढ़ना हो तो पण्डितके साथ रहकर पढ़ना पड़ता है। लेकिन दान करनेकी जो रीति-नीति है, उसको तो लोग सीखते ही नहीं हैं।

मैं पहले ही कह देता हूँ कि आपलोग मुझसे दानकी महिमा, उसकी रीति-नीति तो सुनो, लेकिन इसे सुनकर मुझको कुछ मत देना। अरे बाबा! जो तुमको देता है, वही मुझको भी देता है। जो तुम्हारे घरमें भेजता है, वही हमको भी भेजता है। दाता तो एक ही है। उससे तुम्हारा रिश्ता ज्यादा है और हमारा रिश्ता कम है—ऐसा तो हम मानते नहीं।

हमारे शास्त्रमें जो दानका वर्णन है, उसकी एक रूपरेखा मैं आपको बताता हूँ। दातामें दानके पूर्व दो बात होनी चाहिये। एक तो श्रद्धा हो और दूसरे दान देनेकी शक्ति हो। यदि आप श्रद्धासे दान करते हैं तो वह यज्ञ हो जाता है। अश्रद्धासे आप जो भी दान करते हैं, वह निष्फल हो जाता है, न तो इस जीवनमें फल देता है और न मरनेके बाद। अन्तःकरण-शुद्धि भी नहीं करता; क्योंकि अश्रद्धा तो स्वयं अन्तःकरणकी अशुद्धि है। हम किसीको बुरा भी समझते जायँ और देते भी जायँ, यह ठीक नहीं। जिसको दीजिये, भगवत्-भावसे दीजिये और समझिये कि इसके रूपमें तो भगवान् अपनी ही वस्तु लेनेके लिये आये हैं।

तो होनी चाहिये हृदयमें श्रद्धाके साथ-साथ देनेकी शक्ति। देनेकी शक्तिके बारेमें मनुस्मृतिमें ऐसा निर्णय किया हुआ है कि जब तीन वर्षोंतक अपने परिवारके लोगोंका भरण-पोषण करने और नौकर-चाकरोंको वेतन देनेकी शक्ति अपने पास हो, तब दान करना चाहिये। यह नहीं कि दान तो करे, लेकिन अपने परिवार और सेवकोंको कष्ट देकर। लोग यज्ञके नामपर रात-दिन अपने सेवकोंसे काम लेते हैं और कहते हैं कि हमारे यहाँ यज्ञ हो रहा है, तुम भी इसका फल पाओगे, इसमें कुछ बिना लिये-दिये काम करो—यह ठीक नहीं है। यदि आप उनसे कुछ ज्यादा काम लें तो उनको अधिक वेतन देना चाहिये।

बाबूजीकी तनख्वाह कम हो गयी। उन्होंने अपने रसोइयेसे कहा कि खर्च कुछ कम करो; क्योंकि मेरी तनख्वाह कम हो गयी है। इसपर रसोइयेने बाबूजीको तो रूखी रोटी दे दी और स्वयं घीकी चुपड़ी रोटी खाने लगा। बाबूजी बोले कि यह क्या करते हो भाई! रसोइया बोला कि बाबूजी! आपकी तनख्वाह कम हुई है, लेकिन मेरी तनख्वाह कम नहीं हुई।

इसका मतलब यह है कि अपने जो अधीन हैं, उनको पीड़ा पहुँचाये बगैर ही यज्ञ करना चाहिये, दान करना चाहिये। पहले अपनी शक्तिको तौल लें और अपनी श्रद्धाको देख लें। दानके पूर्व इन दोनों बातोंका होना आवश्यक है। इसके बाद यह विचार करें कि आप दान किस भावसे कर रहे हैं ?

आपका अन्तःकरण शुद्ध हो, इसके लिये आप दान कर रहे हैं या आपकी पूँजी बहुत है, इसलिये कर रहे हैं। एक सेठने देखा कि हमारे दीवालिया होनेकी चर्चा चारों ओर चल रही है। लोग कह रहे हैं कि मेरे यहाँ पैसा नहीं रहा है, जिनके रुपये मेरे यहाँ हैं—वे लोग अपने-अपने रुपये उठायेंगे। तो उन्होंने घोषणा कर दी कि मैं एक करोड़ रुपयोंका मन्दिर बनाने जा रहा हूँ। उन्होंने अपनी योजना प्रकाशित कर दी कि एक करोड़ रुपयेका मन्दिर बन रहा है। इसपर लोग यह कहने लगे कि इनके पास तो इतना धन है कि ये एक करोड़ रुपयेका मन्दिर बनाने जा रहे हैं, इसलिये अब उनके यहाँसे रुपये उठानेकी कोई जरूरत नहीं है।

आप यह देखिये कि अन्तःकरण-शुद्धिके लिये दान कर रहे हैं कि पूँजी बढ़ानेके लिये दान कर रहे हैं। हम लोगोंके यहाँ दानका प्रसंग आता है तो लोग क्या करते हैं? दान करके अपनी बेटी, बूआ या बहनके घर भेज देते हैं। कहते हैं कि ये भी तो ब्राह्मण ही हैं ना? लेकिन बेटी, बूआ, बहनको जो दान दिया जाता है, उसका नाम धर्म-दान नहीं होता।

एक बार रक्षाबन्धनके दिन एक सभामें कोई सेठ बैठे थे। उस समय एक महिला प्रिन्सिपल आयी और उसने सेठजीको राखी बाँध दी। सेठजीने कहा कि अब तुम बहन हो गयी, बताओ—मैं तुमको क्या दूँ? वह बोली

देय वस्तुका भी महत्त्व होता है कि आप आखिर

कोई दान निष्फल होता है, उसका कोई फल नहीं होता। कोई दान हीन फल देता है। दान होता है बड़ा, लेकिन उसका फल होता है छोटा; क्योंकि वह अखबारोंमें छप जाता है और लोग तारीफ कर देते हैं। उस दानसे अन्तरंगमें, हृदयमें जो फल होना चाहिये, वह बाहर चला

फिर दान क्या है ? दान यह है कि चीज थी भगवान् की और उसको मैं अपनी मान रहा था । न तो मैंने हीरा पैदा किया, न सोना पैदा किया, न चाँदी पैदा किया, न जमीन पैदा की, न बीज पैदा किया । अन्नका बीज भी भगवान् द्वारा निर्मित है । तब उसमें अपनी चीज क्या है ? पंचभूत अपना है कि सोना अपना है कि हीरा अपना है कि मोती अपनी है । क्या अपना है ? पहली भूल तो यह थी कि हमने पैसेको अपना माना—अब यदि हम सब कुछ भगवान् का मानने लग जायँ तो हम एक सत्यपर आ जाते हैं । सौ-का-सौ भगवान् का न मानें तो उसमें-से एक पैसा निकालकर किसीको दे दीजिये । लेकिन यह ध्यानमें रखिये कि आप उसको देते नहीं हैं बल्कि उसपर उसका भी उतना ही अधिकार है, जितना आपका है । आप उसको देकर उसके ऊपर कोई एहसान नहीं लादते, उसको कृतज्ञ नहीं बनाते । वह वस्तु तो आपकी भी और उसकी भी है । उस दानसे आपका लाभ यह हुआ कि आपकी ममताकी चहारदीवारी पहले सौ पैसेपर थी । अब उसमें-से जब एक पैसा आपने निकाल दिया तो ममताकी चहारदीवारी थोड़ी छोटी हो गयी । इसी अंशमें आपका जो ममत्व अन्तःकरणमें था, वह कम हो गया । इसी तरह आपको अपने मोह और ममताका विस्तार मिटाना है और यह समझना है कि 'त्वदीयं

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

एक दिनकी बात है, राजा अपने सिंहासनपर बैठे हैं, है, यह सब आपका ही है, आप निःसंकोच अपनी बात कहिये।
Hinduism Discord Server <https://discord.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh
राजद्वार है, सभी की है, अर्चना करके उस स्थान पर एक महाराजकी बात परीक्षा: इसके पूर्व ही मध्याह्न ३:३०

इतना कहकर साँप चला गया।

महाराज जरा भी विचलित न होते हुए विनम्र कण्ठसे बोले—‘ऐसा ही होगा, महाराज, इसी क्षणसे यह राज्य आपका है।’ ऐसा कहते हुए एक लोटा और कम्बल लेकर राजभूषणादिका त्याग करके तपस्वीके वेशमें महाराज वनको चल पड़े।

यह संवाद पूरे राज्यमें फैल गया। चलते-चलते महाराजको प्यास लगी। सामने ही एक कुआँ था, पानी निकालनेके लिये जैसे ही राजा आगे बढ़े तो देखते हैं; कुएँमें चार प्राणी हैं। महाराजने भलीभाँति देखनेके लिये कुएँमें झाँका तो चारों प्राणी एक साथ चीख पड़े—आप कौन हैं? हमें बचाइये, हमें प्राण-दान दीजिये।

उनकी आवाजको सुनकर महाराजने कुएँमें झाँका, उन्होंने देखा, तो वहाँ एक मानव, एक शेर, एक वानर और एक साँप है। महाराज अचरजमें पड़कर सोचने लगे, आखिर ये सब वहाँ कैसे पहुँचे!

परोपकारी महाराजने तुरन्त अपने मनके कौतूहलपर लगाम लगायी और अपने काममें जुट गये। उन्होंने कन्धेपर रखी रस्सीको कुएँमें फेंक दिया और उन फँसे हुए प्राणियोंको निकालने लगे।

पहले उन्होंने शेरको निकाला। शेर बाहर आते ही धन्यवाद देते हुए राजासे बोला—मैं हिंसक प्राणी अवश्य हूँ, पर कृतघ्न नहीं हूँ, यद्यपि मैं भूखा हूँ, पर आपको हानि नहीं पहुँचाऊँगा। मेरा निवास दण्डकारण्य है। आपको प्रणाम, जब कभी आवश्यकता होगी, उस वनमें मेरा पता करनेसे मैं मिल जाऊँगा। अब मैं जाता हूँ, जानेसे पहले आपको एक बात बताना चाहूँगा—आप सबको कुएँसे निकाल लें, पर उस आदमीको मत निकालना। इतना कहकर शेर चला गया।

अब आयी साँपकी बारी, महाराजने साँपको बाहर निकाला। विषधर नाग था, उसे सामने देख राजा थोड़ा-सा घबड़ाये। साँपने कहा—यद्यपि मैं विषधर सर्प हूँ, पर अकृतज्ञ नहीं हूँ। आपने मुझे प्राणदान किया है, आपको कभी भी मेरेसे किसी प्रकारके अनिष्टकी आशंका नहीं रहेगी, वरन् किसी भी आवश्यकतामें मेरा स्मरण करते ही मैं आपके समक्ष उपस्थित हो जाऊँगा। अब मैं चलता हूँ, जाते-जाते एक बात और कह दूँ, वह यह कि कौएँ पड़े व्यक्तिको मत निकालना।

अब महाराजने बन्दरको निकाला। बन्दरने कहा—
 भैया! कुएँमें पड़े आदमीको नहीं निकालनेमें ही तुम्हारी
 भलाई है। मैं दण्डकारण्यमें रहता हूँ, आपने मुझे प्राणदान
 दिया। जब भी आप उधरसे गुजरोगे तो मेरेसे अवश्य मिलना,
 आवश्यकता पड़नेपर मैं भी तुम्हारा उपकार करनेकी कोशिश
 करूँगा। अब मैं चलता हूँ।

शेर, वानर, साँप सब चले गये। महाराजने सोचा अब क्या करूँ! एक आदमी कुएँमें पड़ा हुआ है, उसको बाहर न निकालकर पड़ा रहने दूँ—ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है, जो होना होगा होने दो। इसको भी निकाल लेता हूँ, ऐसा सोचकर राजाने उस व्यक्तिको भी बाहर निकाला।

बाहर आते ही उसने अपना परिचय देते हुए महाराजसे कहा—मैं उदयपुर राजका स्वर्णकार हूँ। आपने मुझे प्राणदान दिया है, मेरी इच्छा है, मैं भी कभी आपकी सेवामें लग सकूँ। यदि आप कभी उदयपुर पधारें तो आपकी सेवाका अवसर पाकर मैं अपनेको धन्यभाग महसूस करूँगा। इतना कहकर उसने भी विदा ली। परोपकारका काम पूरा करके महाराज घूमते-घूमते दण्डकारण्यके जंगलमें पहुँचे, वहाँ उसी शेरसे भेंट हो गयी। शेर अपने जीवनदाताको सामने देखकर फूला न समाया। शेर वनका राजा था, अतः उसने अपनी वन्य प्रजासे महाराजको नमन करनेको कहा। सभी वन्य पशु महाराजका अभिवादन करने लगे। शेरकी कृतज्ञताको देख महाराजकी आँखोंमें पानी भर आया। इतना ही नहीं वनराजने जंगलकी श्रेष्ठ चीजोंका उपहार भी दिया अपने प्राणदाताको। उन वस्तुओंमें एक अनोखा रत्नहार था। राज्याधिकारी होनेपर भी ऐसा सुन्दर हार महाराजने कभी नहीं देखा था। महाराज सोचने लगे—‘मैं तो घुमक्कड़ हूँ, यह हार कहाँ रखूँगा।’ ऐसा सोचकर उन्होंने शेरको वह हार वापस करना चाहा, पर शेरने उसे स्वीकार नहीं किया। आखिर महाराजको रत्नहार स्वीकार करना ही पड़ा।

महाराजकी यात्रा आगे बढ़ी, अब महाराज पहुँचे उदयपुर। उदयपुर पहुँचकर उन्होंने राजस्वर्णकारका पता किया और उनके पास पहुँचे। महाराजने उक्त रत्नहारको स्वर्णकारको दिखाते हुए पूछा—इसका मूल्य कितना होगा, क्या आप बता

संन्यासीकी बातको सुनकर महाराज सोचमें पड़ गये

[प्रेषिका—डॉ० ब्र० गुणीता, विद्यावारिधि, वेदान्ताचार्य]

मनमानी द्विज धेनु लेहिं मत तिनतें बोलो ॥

नन्दजीने कहा—इतनेसे तो हमारी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने ब्राह्मणोंसे कहा—ब्राह्मणो, मेरी तो इच्छा यह होती है कि तुम सबके समर्थका दामर्ग दे दूँ। किंतु तुममें हम मिले कैसे?

नन्दजीने सुत जन्म उमंग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये॥
 दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।
 ब्रजमहँ विहरें घुँघची पहिरें, वर देहु जिही तनु धूरि लगाये॥
 नन्दबाबाने कहा—सूतजी, कुछ हमारी समझमें बात
 आयी नहीं। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न, पृथिवी, हाथी,
 घोड़ा, ऊँट, बछेरा, गौ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अन्न,
 वस्त्र आप जो चाहें माँग लें।
 यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सूत बोले—
 महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ कि वह कौन
 है? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते-माँगते
 बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही
 माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर
 अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पड़े, यही अन्तिम
 याचना हो।
 नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है।
 इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो।
 दूसरेके यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है?
 सूत बोले—आप तो महान् हैं, उदारशिरोमणि हैं।
 मेरी तो यही भीख है—
 धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप,
 मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारौंगो।
 पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहीं बाढ़्यो मान,
 दान पाहि आइ ब्रजमाहिँ डेरा डारौंगो॥
 कुलको तुम्हारे सूत, नयो नयो भयो पूत,
 धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो।
 नेहते निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख,
 साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥
 नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा,
 इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं
 हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें।
 सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते
 हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से
 लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा
 है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल
 पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये
 ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी
 हैं। उनके पास भी ऊँट हैं। उन्होंने नन्दजीका जयकार

किया। नन्दजीने पूछा—कहो भाई, तुम कौन हो? इन
 ऊँटोंमें ये इतनी बहियोंको लादकर क्यों लाये हो?

यह सुनकर वह बूढ़ा आगे बढ़कर बोला—
 मढ्यो झगा सोने तगा, दगा करूँ नहिँ नैंक।
 हरो पेच तुरा पगा, जगा हमारो बेंक॥
 नन्दजीने हँसकर कहा—अरे भैया, तू तो बड़ा
 तुनकबाज है। ये सब और कौन हैं?

यह सुनकर एक ओर संकेत करके बोला—

सवैया

धोती फटी कछु नाक कटी पिचकी चिपटी हमरो जिह भैया।
 कंठ सुरीलो रंगीलो बड़ो चटकीलो छबीलो बड़ो ही गवैया॥
 भाँग चढ़ाड़ नहाड़ मलाई उड़ाइ चुगाइ सदाहिँ रुपैया।
 दूबर दूध बिना ब्रजराज बड़ोहि लबार जि माँगतु गैया॥
 नन्दजी हँसकर बोले—अच्छा भैया, यह गवैया है तो
 इसे गैया दिला दो।

फिर नन्दजीने पूछा, ‘भैया! इन ऊँटोंपर क्या लदा
 है? जगा बोला—

बही पुरानी सबनिमहँ, सब गोपनिके वंश।

आप सबनिके मुकुट मनि, गोपवंश अवतंश॥

नन्दजीने उत्सुकताके साथ कहा—अच्छा, हमारे
 वंशको सुनाओ।

इतना सुनकर बड़े हर्षके साथ जगाने ऊँटसे बहुत-
 सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको
 पलटकर उसे उठाकर नन्दबाबाके समीप आया और
 उसमेंसे पढ़ते हुए बोला—

छप्पय

प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी।

भीमक तिनके पुत्र भये तिनि महाबाहुजी॥

तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी।

कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥

कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर।

कृती तनय तिनि गोपपति, धर्मधीर सुत धीरधर॥

छप्पय

धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत।

देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥

काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।

देवमीढ़ मथुरेश संग ब्याही कन्या जिनि॥

उत्तर—बालकको, विद्यार्थीको, वृद्धको, विरक्तको रोगीको, असहाय अभावपीड़ितको तथा असमर्थको केवल रक्षामात्रके लिये आवश्यक वस्तु देनी चाहिये। जो दूसरोंको दे सके, उसे विद्या और धन देना चाहिये।

प्रश्न—दान क्यों देना चाहिये?

उत्तर—चूँकि कभी लिया गया है, इसलिये उद्धरण होनेके लिये देना चाहिये या फिर कई गुना अधिक पानेके लिये देना चाहिये।

प्रश्न—दानमें क्या लेना चाहिये?

उत्तर—जिससे जीवनका निर्वाह हो, जिससे जीवनमें सद्गति हो, जिसकी वृद्धि की जा सके और दूसरोंको दी जा सके, वही लेना चाहिये।

प्रश्न—दातासे उक्तृण कैसे हुआ जा सकता है?

उत्तर—जिस दशामें जिस अवस्थामें तुमने दातासे पाया है, उसी अवस्थामें जब किसीको अपने सम्मुख देखो उसे तुम भी मिली हुई वस्तुका दान करो, यही दातासे उन्नत होनेका उपाय है। (देनेकी वस्तु शुद्ध हो, सुन्दर हो, समयोपयोगी हो)।

प्रश्न—उत्तम कोटिका दान किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसके पीछे अभिमान न हो, बदलेमें कुछ लेनेकी इच्छा न हो, देकर पश्चात्ताप न हो, किसी दूसरेको दःख न हो, वही उत्तम कोटिका दान है।

प्रश्न—दानके योग्य पात्र कौन हैं?

उत्तर—जो सन्तोषी हो, परिश्रमी हो, उदार हो, तपस्वी हो, दोषोंका त्यागी हो और भगवद्भक्त अथवा आत्मज्ञानी हो, वही सपात्र है।

जो मिले हुएका अपने निर्वाहमें उपयोग करे, उसका भोगी न बने और बच जानेपर दूसरोंको देते हुए प्रसन्न रहे। जो उत्तम कुलीन हो, सदाचारी हो, विद्वान् हो, स्वावलम्बी हो, दयालु हो, कर्तव्यपरायण हो, आस्तिक हो, वही सुपात्र है।

प्रश्न—कितना भाग दान करना चाहिये?

Hinduism Discord Server <https://discord.gg/pharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

वही दान करनेयोग्य है। जो धन प्राप्त हो, उसका दसवाँ भाग देनेका विधान है। जो अपनी आवश्यकतासे अधिक हो, उसे ही दूसरोंकी आवश्यकतापूर्तिके लिये देश-काल, पात्रका विचार रखते हुए दान करना धर्मदान है। इसी प्रकार लोभवश दान, कामासक्त होकर दान, लज्जित होकर दान, भयातुर होकर दान और हर्षित होकर दान—ये दानके छः भेद हैं। दानमें भेद होनेसे फलमें भी भेद होता है।

प्रश्न—दान न करनेसे क्या हानि है?

उत्तर—जो दान नहीं करते; वे लोभवश आगे चलकर मूर्ख होते हैं, रोगी होते हैं, दूसरोंके सेवक बनकर दुःखी होते हैं। भिखारी बनते हैं। दरिद्रतासे पीड़ित रहते हैं।

प्रश्न—दानसे क्या लाभ है?

उत्तर—धर्मपूर्वक दान करनेवाले लाभके लोभी न रहकर उदार होते हैं, श्रद्धा आदि दैवी गुणोंके धनी बनते जाते हैं, शरीरसे निरोग होते हैं; अनुकूलतासे, सुविधाओंसे सुखी रहते हैं; धनी कुलमें जन्म लेते हैं और विरक्त होते जाते हैं।

प्रश्न—दानका फल लोक-परलोकमें कैसे मिलता है ?

उत्तर—श्रेष्ठ पुरुषोंको सात्त्विक धर्मदानका फल परलोकमें मिलता है। अविवेकी, लोभी, मोही, कामीको दानका फल इस लोकमें मिलता है। जो देकर पश्चात्ताप करता है, जो अपात्र-कुपात्रको देता है, अश्रद्धापूर्वक देता है, उसे कहीं भी दानका फल नहीं मिलता है। वह जो कुछ देता है—उसके संग्रहकी चिन्तासे मुक्त हो जाता है, इतना ही लाभ होता है। तमोगुणी दानका फल कामोपभोगकी सुविधा है। रजोगुणी दानका फल धन और मानकी प्राप्ति है। सतोगुणी दानका फल भोगोंसे विरक्ति और दैवी सम्पत्तिकी प्राप्ति है।

प्रश्न—भिखमंगोंको दान देना चाहिये या नहीं?

उत्तर—भिखमंगोंको अन्नकी भीख तो देनी चाहिये,

सद्वृत्ति, सदाचार, सद्गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मणको ही देनी चाहिये।

श्रम करते हुए जो परिवारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके योग्य धन नहीं कमा पाते, उनकी आवश्यकतापूर्तिके लिये सहायता करनी चाहिये। आलसी, विलासी, हिंसक, क्रोधी, धर्मविमुख दानका पात्र नहीं होता।

प्रश्न—कोई माता या पतिव्रता पत्नी प्रेमका दान करते हुए महात्मा-सन्त क्यों नहीं कही जाती?

उत्तर—अधिकतर माता अथवा पत्नी प्रेमका दान करते हुए बदलेमें कुछ-न-कुछ पानेकी अपेक्षा रखती हैं। अधिकतर प्रेमके बदलेमें कोई धन चाहते हैं, कोई मान तथा अधिकार चाहते हैं। कोई प्रेमके बदलेमें प्रेम चाहते हैं; क्योंकि अपनेको प्रेम करनेवाले मानते हैं। जो कर्ता है, वही भोक्ता बनता है। जहाँ कर्ता भोक्ता है, वहीं अहंकारकी सीमा है। जहाँतक अहंकार है वहाँतक प्रेम ढका हुआ है। अहंकार दानी नहीं हो पाता; क्योंकि अहंकार भिखारी है, दरिद्र है। अहंकार जो कुछ भी अपना मानकर देता है, उसके बदलेमें कुछ-न-कुछ पानेके लिये ही देता है। माता-पिता-पुत्र-पत्नी आदि जितने सम्बन्धी हैं, वे अहंकारके ही नामरूप हैं। अहंकार अपना मानकर आरम्भमें ही अपनी सन्तुष्टिके लिये लेता है, अपना मानकर दानी बनता है, त्यागी बनता है, अहंकार ही प्रेमी बनता है। अहंकार ही प्रेमकी पूर्णतामें बाधक है। अहंकार न रहनेपर जो शेष है, वही शान्तात्मा है—महात्मा है—परमात्मा है।

प्रश्न—दान करना चाहते हैं, फिर क्यों नहीं कर पाते?

उत्तर—दान करनेकी अभिलाषा मानवी स्वभाव है। अदानवृत्ति अर्थात् न देनेकी रुचि राक्षसी स्वभाव है। दैवी वृत्ति उदारतापूर्वक दानके लिये उत्सुक होती है, परन्तु लोभकी प्रधानतामें राक्षसी वृत्ति दान नहीं करने देती है। जहाँ लोभ है, वहीं भय है। जहाँ भय है, वहीं भेद है। जहाँ भेद है, वहाँ प्रेम नहीं विकसित होता। जहाँ भय है, वहाँ शैतानका राज्य है; जहाँ प्रेम है, वहाँ

प्रभुका साम्राज्य है। जब भीतर प्रेम होता है, तभी बाहर सब प्रभुमय दीखने लगता है। जिसकी दृष्टिमें सभी प्रभुमय है तभी दान करना सहज स्वभाव हो जाता है, भेदभाव मिट जाता है, कोई शत्रु रह ही नहीं जाता, सर्पमें, फूलमें, काँटेमें, जीवनमें, मृत्युमें प्रभुकी ही क्रीड़ा लीला दीखने लगती है। जबतक हृदय प्रेमसे भरपूर नहीं होता, तबतक ही विषयोंमें प्रतीत होनेवाले सुखोपभोगकी कामना तथा लोभ, मोह, ममता, रागद्वेष, ईर्ष्या, क्रोध-कलह, निन्दा, घृणा आदि दुर्विकारोंसे अहंकार घिरा रहता है। जिस दिन हृदय प्रेमसे भर जाता है, उसी दिन दुर्विकारोंके मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं तब तो चारों ओर परमात्माका बोध होने लगता है। तभी जीवनका सत्य, जीवनका आनन्द, जीवनका सौन्दर्य आलोकित होता है। इसके विपरीत दिशामें हम लोभसे-कामसे-भयसे-दुःखसे-अशान्तिसे तथा चिन्तासे घिरे हुए हैं। हमें प्रेमको पूर्ण करनेकी साधनाके लिये दृढ़ संकल्प करना है।

प्रश्न—भिखारियोंको देना क्या उन्हें आलसी नहीं बनाना है?

उत्तर—जबतक किसी प्रकारकी चाह है, तबतक सभी भिखारी हैं। कोई मुखसे माँगते हैं, कोई पापोंसे तरसते रहते हैं, कोई पूर्तिके लिये मनसे व्यथित रहते हैं। कोई पैसा माँगता है, कोई संयोग-भोगका सुख माँगता है। कोई मान चाहता है। कोई प्यार तथा अधिकार चाहता है। कोई वस्तु चाहता है, कोई वोट ही चाहता है। संसारसे चाहनेवाला सदा भिखारी ही बना रहता है। जो किसीसे कुछ लेता है, उसे देना भी चाहिये। देनेवाला उदार होता है लेनेवाला दरिद्र, दीन बना रहता है, अतः कुछ-न-कुछ पात्रकी योग्यताके अनुसार देनेयोग्यको देते रहना ही शुभ है, सुन्दर है। हर किसीको उसके श्रमानुसार योग्यता तथा आवश्यकताका निर्णय करते हुए जहाँतक जो कुछ दे सको—धन, मान, प्यार, अधिकार, सुख, सन्तोष देते रहो।

अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति

[अन्नदानसे श्रेष्ठ दूसरा दान नहीं]

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी)

भारतीय संस्कृति उत्सर्गप्रधान संस्कृति है। सम्पूर्ण विश्वमें इसके औदार्यकी, सौशील्यकी प्रशंसा की जाती है। भारतमें अवतरित होकर अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायणने भी इस वसुन्धराकी प्राणभूता अनुपम संस्कृतिका मान बढ़ाया। हमारी ये सनातन संस्कृति पारमार्थिक भावसे भरी है, जहाँ तुच्छ स्वार्थको त्यागकर औरोंके लिये जीनेका पाठ स्तन्यपान करते-करते शिशुओंको शैशवमें ही प्राप्त हो जाता है। भारतका मानव ही नहीं पशु-पक्षीतक भी परोपकारमयी उत्सर्गोन्मुखी उदात्त संस्कृतिके संरक्षणमें—परिपालनमें सदैव सजगतापूर्वक प्रवृत्त रहा है। जटायु, सम्पाती, कपोत, मृगी, गौ इत्यादिके आख्यान पुराणोंमें बहुधा प्राप्त होते हैं। ‘दान’ भारतीय सनातन संस्कृतिका स्वभाव है (धर्म है)। जैसे व्यक्तिके, पदार्थके स्वभाव (अग्निमें दाहकता, जलमें शीतलता आदि)के बिना उस व्यक्तिका, पदार्थका अस्तित्व सम्भव नहीं, ठीक वैसे ही दानके बिना भारतीय संस्कृतिका अस्तित्व संदिग्ध हो जायगा। औपनिषत्-आख्यानोमें दानकी महिमाका वर्णन विस्तारसे प्राप्त होता है। महानारायणोपनिषत्में कहा गया है—‘सर्वाणि भूतानि प्रशंसन्ति दानान्नातिदुश्चरं तस्मात् दाने रमन्ते’ सर्वभूतानि उपजीवन्ति दानेन आरातीरपानुदन्त दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्व प्रतिष्ठितं तस्मात् दानं परमं वदन्ति।’ (खण्ड २१)

अर्थात् दानकी प्रशंसा सब प्राणी करते हैं, किंतु भगवत्कृपाके बिना दान करनेकी प्रवृत्ति दुष्कर ही है। सभी जीव दानसे उपजीवित हो रमण करते हैं। दानके द्वारा शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। द्वेष-भाव दूर हो जाता है। सब कुछ दानमें ही प्रतिष्ठित है, अतः दानको श्रेष्ठ कहा गया है।

१. आयका दशांश भगवत्प्रीत्यर्थ—मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये शास्त्रोंने उपदेश किया कि न्यायद्वारा उपार्जित वित्तसे दशांश भाग निकालकर भगवत्प्रीत्यर्थ

उसका विनियोग करना चाहिये [प्रदर्शन आदिके लिये नहीं]—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।

कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

पितामह ब्रह्माजीने हिंसा-प्रवृत्तिवाले दैत्योंको दयाकी शिक्षा दी, भोगवादी-प्रवृत्तिवाले देवताओंको इन्द्रियसंयमरूप दमनकी शिक्षा दी तथा लोभाभिभूत मानसिकतावाले मनुष्यको आत्मोद्धारार्थ दानकी शिक्षा प्रदान की।

२. दानकी अवश्यकर्तव्यता—श्रद्धापूर्वक देना चाहिये, अश्रद्धापूर्वक नहीं। पवित्र देशमें (तीर्थ आदिमें), पवित्र समयमें (पूर्णिमा, संक्रान्ति आदि), पवित्र सच्चरित्र पात्रको (वेदवेत्ता ब्राह्मण न मिले तो जात्या ब्राह्मणको ही) दान देना चाहिये।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।

(गीता १७।२०)

‘श्रद्धया देयम् अश्रद्धयादेयम्।’

स्वसामर्थ्यानुसार देना चाहिये, उदारतापूर्वक देना चाहिये [श्रिया देयम्], विनम्रतापूर्वक [प्रत्युपकारकी भावनासे नहीं] देना चाहिये [ह्रिया देयम्], दान नहीं करूँगा तो परलोकमें प्राप्त नहीं होगा—इस भयसे देना चाहिये। अथवा भगवान्ने मुझे आवश्यकतासे अधिक कुछ भी धरोहरके रूपमें समाज-कल्याणके लिये पात्र मानकर दिया है, तो औरोंको दूँ, अन्यथा भगवान्को क्या मुख दिखाऊँगा—इस भयसे देना चाहिये [भिया देयम्]। ज्ञानपूर्वक विधिपूर्वक देना चाहिये। प्रमादसे या उपेक्षापूर्वक नहीं [संविदा देयम्]। आदरपूर्वक, उदारतापूर्वक देना चाहिये, चाहे जैसे दो किंतु देना चाहिये। (तैत्तिरीयोपनिषत्, शीक्षावल्ली)

३. दाताकी भावना—जिस प्रकार एक किसान

अपने खेतकी सफाई करके उसमें हल चलाकर उसे तैयार करके बीज बोता है, पानी-खाद देता है, रक्षा भी करता है, ठीक उसी प्रकार दाताको बड़े पवित्र मनसे विश्वासपूर्वक

(५) सभी दानोंका आधार अन्नदान ही है।

देहसासरसर्वस्वभूत रेत बनता है, उसीसे ये प्रजा उत्पन्न होता है - अन्नं वै प्रजायति: ततो ह वै तद्गतस्तस्माद्विद्मः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

‘न अन्नं दत्तं तेन किञ्चित्

स्वलपं मत्वा यथा त्वया।'

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३६।१२९)

श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें भगवान् विष्णु सनकादिकोंसे कहते हैं, 'मैं ब्राह्मणोंके मुखमें जाती हुई सरस घृताप्लुत आहुतियोंसे जितनी तृप्तिका अनुभव करता हूँ, उतनी तृप्ति मुझे अग्निकुण्डमें प्रदत्त आहुतिसे भी नहीं होती।' (श्रीमद्भा० ३।१६।८)

लोकोक्ति भी है ‘मधुरान्नप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति
जन्तवः।’ इहलोक और परलोक—उभयविध लोकसुख-
सौविध्यप्राप्तिका साधन अन्नदान है। अतः प्राणिमात्रको
यथाशक्ति अन्नदान अवश्य करना चाहिये।

भागवतांक पृ० २८८

प्रेरक-प्रसंग—

गरीबके दानकी महिमा

गुजरातकी प्रसिद्ध राजमाता मीणलदेवी बड़ी उदार थी। वह सवा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका दर्शन करने गयी। वहाँ जाकर उसने स्वर्ण-तुलादान आदि किये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसंगमें पुत्र राजा सिद्धराजने प्रजाका लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीणलके मनमें अभिमान आ गया कि मेरे समान दान करनेवाली जगत्में दूसरी कौन होगी! रात्रिको भगवान् सोमनाथजीने स्वप्नमें कहा—‘मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब स्त्री दर्शन करने आयी है, तू उससे उसका पुण्य माँग।’

सबेरे मीणलदेवीने सोचा, ‘इसमें कौन-सी बड़ी बात है। रुपये देकर पुण्य ले लूँगी।’ राजमाताने गरीब स्त्रीकी खोजमें आदमी भेजे। वे यात्रामें आयी हुई एक गरीब ब्राह्मणीको ले आये। राजमाताने उससे कहा— ‘अपना पुण्य मुझे दे दे और बदलेमें तेरी जितनी इच्छा हो, उतना धन ले ले।’ उसने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—‘तूने ऐसा क्या पुण्य किया है, मुझे बता तो सही।’

ब्राह्मणीने कहा—‘मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसा-तैसा

थोड़ा-सा बिना नमकका सत्तू दिया। उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की। आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुए से मैंने पारण किया। मेरा पुण्य ही क्या है! आप बड़ी पुण्यवती हैं; आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र—सभी राजा हैं। यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका लगान माफ करवा दिया, सवा करोड़ मोहरोंसे शंकरजीकी पूजा की। इतना पुण्य कमानेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर कोप न करें तो मैं निवेदन करूँ।’

राजमाताने क्रोध न करनेका विश्वास दिलाया। तब ब्राह्मणीने कहा—‘सच पूछें तो मेरा पुण्य आपके पुण्यसे बहुत बढ़ा हुआ है। इसीसे मैंने रुपयोंके बदलेमें इसे नहीं दिया। देखिये—१. बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, २. शक्ति होनेपर भी सहन करना, ३. जवान उम्रमें व्रतोंको निबाहना और ४. दरिद्र होकर भी दान करना—ये चार बातें थोड़ी होनेपर भी इनसे बड़ा लाभ हुआ करता है।’

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीणलदेवीका अभिमान नष्ट हो गया। शंकरजीने कृपा करके ही ब्राह्मणीको भेजा था।

सम्पत्तिको विपत्ति बननेसे बचाता है—दान

(श्रीबालकविजी वैरागी)

महात्मा संत कबीरके अध्येता और शोधकर्ता ही इस प्रचलित दोहेके बारेमें प्रामाणिक तौरपर कुछ कह सकते हैं कि यह दोहा कबीर साहबका है या पाठान्तर, रूपान्तर अथवा अवान्तरसे चल रहा है। जो भी हो मौलिकतापर बहस किये बगैर हम दोहेको मर्म, धर्म और कर्मसे समझ लें तो बहुत बड़ी बात होगी। दोहा है—

चिड़ी चोंच भर ले गई नदी घट्यो नहिं नीर।

दान दिये धन ना घटे कह गये दास कबीर॥

अपने प्रकट और प्रचलित लोकार्थके मामलेमें दोहा किसीका मोहताज नहीं है। पंक्तियोंका मर्म, धर्म, कर्म और अर्थ स्पष्ट है। दान देनेसे धन घटता नहीं है। चिड़ियाकी चोंचमें समाता ही कितना है? चोंचमें समायी इस एक बूँदसे नदीका नीर, उसका प्रवाह, उसकी गति, उसका धर्म, उसका कर्म, उसकी प्रांजलता रत्तीभर भी कम नहीं होती। अपने सागर-लक्ष्यसे वह भटकती भी नहीं। उसकी दिशा और दशा नहीं बदलती। अपने रास्तेपर अपनी गतिसे वह सतत, अनवरत और निरन्तर बढ़ती जाती है। चिड़ियाको जीवन और नदियोंको अपना लक्ष्य मिल जाता है। दानकी यही महिमा है। इस महिमाका एक अप्रकट अर्थ और भी है। यह निहितार्थ अत्यन्त गम्भीर है। दोहेको पढ़नेवाले इस गम्भीर निहितार्थतक नहीं पहुँचते। निहितार्थ यह है कि जो बूँद चिड़ियाकी चोंचमें गयी, बस वही मीठी रही; शेष नदी, सागरमें जाकर अपनी मिठास, अपना मूल स्वाद खो बैठी—खारी हो गयी। धन-सम्पत्ति और सम्पदा उतनी ही सार्थक है, जो किसीकी धर्मरक्षा और प्राणरक्षामें काम आये। शेषको तो अन्ततः निरर्थक होना ही है। महाराजा भर्तृहरिने अपने नीतिशतकमें धनकी तीन गतियाँ सदियों पहले स्पष्ट कर दी हैं। ये स्थितियाँ अज्ञात नहीं, सर्वज्ञात हैं—(१) दान, (२) भोग और (३) नाश। प्रारब्ध और पुरुषार्थके बलपर प्राप्त सारा राज-वैभव भोगनेके बाद भर्तृहरिने धनकी पहली गति लिखी और सुझायी वह है—‘दान’। दूसरे क्रमपर रखा ‘भोग’ को और तीसरेपर जगह दी ‘नाश’

को। सृष्टिमें जबसे ‘सम्पत्ति’ शब्द आया, तभीसे उसका सहोदर शब्द भी हमारे सामने बैठा है। वह शब्द है ‘विपत्ति’। सचमुच सम्पत्तिसे बड़ी कोई विपत्ति नहीं होती। सबसे बड़ी विपत्तिका नाम है—सम्पत्ति। अध्ययन करके देख लो, शोध कर लो; यदि सम्पत्तिका सदुपयोग नहीं है तो वह विपत्ति है। इस विपत्तिसे निबटनेकी पहली सीढ़ी है—‘दान’।

संसारके हर धर्म और हर भूभागमें दानका अपना स्थान है। उसकी अपनी शैली है। हर जगह दानकी अपनी आचरण-संहिता है। अपनी महिमा है। भारत इस मुकामपर भी अकेला है। भारत ही वह देश है, जहाँ दाताको समझाया गया है कि जिसे भी दो, उसे इस तरह दो कि उसकी कृतज्ञता चेतन है कि अचेतन—इसका आभासतक किसीको नहीं हो। तुम जानो, लेनेवाला जाने और तीसरा बस तुम्हारा अन्तर्यामी ईश्वर जाने। तुम्हारे बाँये हाथको भी यह पता नहीं चले कि तुम्हारे दाहिने हाथने किसको, कब और कितना तथा कैसा-क्या दिया। इसके इतर दिया हुआ उपहार, भेंट या पुरस्कार पाखण्डमें स्थान पायेगा। दान नहीं होगा। ‘दान’ तुम्हें मोक्षतक ले जायगा। भेंट, पुरस्कार और उपहार तुम्हें यशका स्वाद चखा सकते हैं। वे ‘दान-दर्शन’ के दायरेसे बाहरके द्वारपाल हैं। यशलिप्सा मनुष्यको पाखण्डकी गलियोंका पदयात्री बना देती है। आपकी अपनी बस्तीमें इसके पचासों उदाहरण आपके आस-पास बिखरे पड़े हैं। यहाँ-वहाँ लगे लाखों पत्थर, छोटे-बड़े द्वार, ऊँचे-नीचे शिलापट्ट और न जाने क्या-क्या आप देखते हैं, पढ़ते हैं, पर भारतीय दान-दर्शनने उन्हें दान नहीं माना है। वे हमारी यशैषणाके स्मारक हैं। हमारी यशेच्छा उन्हें प्रेरक और प्रोत्साहक मान सकती है, पर भारतकी आत्मा उन्हें दान नहीं मानती। अपनी सम्पत्ति, अपने धन और अपनी लक्ष्मीका सदुपयोग माननेतक बात गले उतर जायगी, पर दानकी श्रेणीमें इस लिप्साको नहीं रखा जायगा।

दानकी महिमाके करोड़ों उदाहरण भारतमें घर-घर

वस्तुतः दान; जिसे हम मोक्षप्रदाता कर्म मानते हैं, एक जीवन और जन्म-कल्याणकी खेती है। जितना बोओगे, उसका कई गुना अधिक पाओगे। जितना बाँटोगे, उतना बढ़ेगा। यह पुण्यप्राप्तिका एक कृषि-कर्म है। पुनर्जन्मसे मुक्तिका सरलतम और आसान रास्ता। इसके लिये किसीका प्रवचन और किसीका उपदेश सुननेकी भी आवश्यकता नहीं है। बस, अपने अन्तर्यामीसे बात करो और बीज बोना शुरू कर दो।

सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ है

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी, एम० कॉम०)

दानका अर्थ—धर्मकी दृष्टिसे या दयावश किसीको कोई वस्तु देनेकी क्रिया दान है। परहितकी दृष्टिसे उदारतापूर्वक दुःखियोंकी सहायता करना भी दान कहलाता है। साधारण अर्थोंमें प्रेम, परोपकार तथा सद्भावनाको दान माना जाता है। आध्यात्मिक दृष्टिसे सार्वभौम प्रेम तथा ईश्वरके प्रति अनन्य श्रद्धा एवं सबके प्रति सद्भाव यह महान् दान है। अपनी सम्पत्तिमेंसे शुद्ध भावसे बिना किसी फलकी कामनासे जो दिया जाय, उसे दान कहते हैं। लोभको जीतनेका एकमात्र साधन है—दान। यदि लोभ भी हो तो वह दान करनेका हो। बृहदारण्यकोपनिषद्में प्रजापतिने अपनी तीन संतानों, देवताओंको दम (अपनी इन्द्रियों और इच्छाओंका दमन करो) यानी संयमका, मनुष्योंको दान तथा असुरोंको दया करनेका उपदेश दिया है। धर्मके चार चरणोंमें एक चरण कलियुगमें विशेष रूपसे धारण करनेयोग्य है—दान। दान किसी प्रकारसे किया जाय कल्याणकारी ही है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण॥

दुनियाके सभी पदार्थ फेंकनेसे नीचेकी ओर जाते हैं

किंतु दान ही एक ऐसी चीज है जो कि फेंकनेसे ऊपरकी ओर उठती है। पर दान देकर उसका स्मरण नहीं करना

चाहिये। कमरेकी खिड़कियाँ बन्द रखनेसे हवा बन्द हो जाती हैं। इसी प्रकार धनका संग्रह कर लेनेसे एवं दानरूपी खिड़कियाँ बन्द कर लेनेसे हवारूपी धनका आना बन्द हो जाता है। चन्द्रमा समुद्रसे बोला ‘सारी नदियोंका पानी आप अपने पेटमें जमा करते हैं, ऐसी तृष्णा भी किस कामकी है?’ समुद्रने उत्तर दिया—‘जिनके पास अनावश्यक है, उनसे लेकर बादलोंद्वारा सर्वत्र न पहुँचाऊँ तो सृष्टिका क्रम कैसे चले?’ यदि सब एकत्र ही करते रहेंगे तो औरोंको कैसे मिलेगा? यही दान देनेकी भावनाका रहस्य है, जो सनातन कालसे चला आ रहा है।

दानके भेद—मुख्य रूपसे दानके दो भेद बताये गये हैं—(१) निष्कामदान और (२) सकामदान।

(१) निष्कामदान—जो दान बिना किसी कामना, फल या इच्छाके दिया जाता है, जिसमें दिखावेकी भावना बिलकुल नहीं होती, वह निष्कामदान होता है। निष्कामदान, गुप्तदान और सात्त्विक दानसे ही प्रभु प्रसन्न होते हैं और यही दान फलित होता है। सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट है। इसे निम्न दृष्टान्तसे अच्छी तरह समझा जा सकता है—

एक बार कुम्भके मेलेमें बहुत-से धनी लोग, महन्त आदि गये। सबन बड़े-बड़े अन्नक्षेत्र लगाये, बड़ी भारी



पुण्य किया। एक गरीब घास खोदनेवालेके मनमें आया कि मैं आज भोजन नहीं करूँगा, आजकी घासका पैसा मैं भी दान कर दूँ। बस, घास बेची तो चार आने आये, यही उसकी पूरे दिनकी आमदनी थी। चार आनेमें तो आता ही क्या? स्नान करके चार आनेके चने लिये और एक भूखेको खिला दिये। जब सभी दानी लौटे तो साथ वह भी था, चार आनेवाला दानी। बड़ी कड़ी धूप पड़ रही थी, उसके पुण्यके प्रतापसे बादलकी छाया सबके साथमें ऊपर चलने लगी, सभी बड़े प्रसन्न होकर बोले—हमारा दान सफल हो गया, परमात्माने छाया कर दी है। इतनेमें इस गरीबको प्यास लगी और पीछे पानी पीने रह गया, छाया बादलकी जो साथ चल रही थी, उसीके ऊपर रह गयी। सब धूपमें चलने लगे, सबने सोचा कि किसी हवाके अनुकूल होनेसे छाया साथ चल रही थी। रुख बदलनेसे छाया दूर चली गयी है, किंतु जब यह चार आनेवाला दानी पानी पीकर आया तो छाया उसके साथ फिर आ गयी और साथ-साथ चलने लगी। तब सब समझ गये कि इस भक्तकी ही महिमा है; क्योंकि छाया इसीके साथ चलती है। सभी उससे पूछने लगे कि तुमने ऐसा क्या दान किया है, जो छाया तुम्हारे साथ चलती है? तब भक्तने कहा—महाराज! दान तो आप सबने किया है, मुझ गरीबके पास क्या है? आज चार आनेकी घासके पैसोंके चने दे दिये हैं एक भूखेको और तो कुछ किया नहीं, बस उसीका फल है।

(२) सकामदान—जो दान किसी फलकी इच्छासे किया जाता है, वह सकामदान कहलाता है। यदि कोई दान समाजमें अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान बढ़ानेके लिये दिया जाता है, अपने धन-वैभवके प्रदर्शनहेतु दिया जाता है, दाताके मनमें दानकी भावना नहीं होती तो ऐसे दान देनेवाले व्यक्तिको दानके सच्चे फलकी प्राप्ति नहीं होती। यह दान नहीं आडम्बरमात्र है। इसे हम निम्न उदाहरणसे समझ सकते हैं—

एक भक्तको प्रभुकृपासे एक दिव्य स्वप्नमें स्वर्ग और नरक दोनोंका दृश्य देखनेका अवसर मिला। स्वर्गमें उसे ऐसे व्यक्ति दिखायी पड़े, जो पूर्वजन्ममें निर्धन और निर्बल थे और नरकमें ऐसे व्यक्ति दिखायी दिये, जो पहले धनी या बड़े दानी थे। नरकमें एक अमीरको, जो प्रसिद्ध

दानी था; मलिन रूपसे बैठा देखकर भक्तने उससे पूछा कि तुम महान् दानी होनेके बावजूद यहाँ क्यों भेजे गये? उसने ठण्डी साँस भरकर जवाब दिया 'मैंने जो लाखों रुपये परोपकारके कार्योंमें दान दिये, उसके पीछे मेरी इच्छा लोक-प्रशंसा तथा राजाको प्रसन्न करनेकी लगी हुई थी। इसलिये वह दान सही अर्थोंमें पारमार्थिक नहीं था। मैंने दान दूसरोंको दिखावेहेतु दिया, दीन-दुःखियोंकी सहायताके लिये नहीं, इससे यह कष्ट भोग रहा हूँ।'

दान किसे और कैसे?

दान सुपात्रको ही दिया जाय, पात्र सच्चरित्र तथा जरूरतमन्द होना चाहिये। ऐसे माँगनेवाले आजकल बहुत हैं, जो दिनभर तो माँगते हैं तथा रात्रिमें उस राशिको शराब, जुआ, नाच-गाने आदिमें खर्च करते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको दिया गया दान ऐसी दुष्प्रवृत्तियोंको बढ़ाता है, जिससे समाजमें व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार फैलता है। अतः दान देनेवाले व्यक्तिको बहुत सोच-विचारकर पात्रका चयन करना चाहिये, अन्यथा उसे दानका फल कदापि नहीं मिल सकता।

दानीको अपनी हैसियतके अनुसार ही दान देना चाहिये, किसीके आग्रहसे अपनी क्षमतासे ज्यादा देना, कष्ट सहकर दान देना कभी नहीं फलता। अपनी क्षमताके अनुसार हर्ष एवं उल्लासके साथ दान करें किंतु उसका प्रदर्शन नहीं करें। दान देते समय अभिमान न हो, लज्जासे विनम्र होकर दान करें।

किसी वस्तु या सेवाका दान बड़ा या छोटा नहीं होता है। दान भले ही किसी भी वस्तुका हो, उसे देनेसे पात्रको संतुष्टि एवं आनन्द प्राप्त होवे तथा उसकी आवश्यकताकी पूर्ति करे, वही श्रेष्ठ होता है। विकलांग, बौने, गूंगे, अनाथ, निर्धन, अन्धे, भूखे, रोगीको दिये गये दानका महान् फल मिलता है। भूकम्प, आपदा, बाढ़ या अकाल आदिके समय आपदाग्रस्त प्राणीको एक मुट्ठी चना दान देना भी सर्वोत्तम है। जैसे-भूखेको अन्न, प्यासेको जल, रोगीको औषधि, वस्त्रहीनको वस्त्र, अशिक्षितको शिक्षा, निराश्रयीको आश्रय एवं जीविकाहीनको जीविकोपार्जनमें सहयोग देना अत्यन्त उत्तम दान है।

दानमें थोड़े या बहुतकी भी कोई सीमा नहीं होती है। बहुत दान भी थोड़ा हो सकता और थोड़ा दान भी

सात्त्विक दान-धर्मसे मनकी क्षुद्रता नष्ट होती है। दान-धर्म तो ईश्वरकी सेवा है। जिस कुलमें दान-धर्म नहीं होता, उस कुलमें अपंग, मतिमंद, कुछ कमीवाले बालक जन्म लेते हैं। प्रेम, करुणा, विनम्रता एवं निरभिमानी भावसे दिया गया दान सात्त्विक दानकी श्रेणीमें आता है। इसमें दाता स्वयंको अपनी सम्पत्तिका न्यासी मानता है। जो भगवान् ने उसे दी है, उसके स्वामी स्वयं भगवान् हैं। सात्त्विक दान यशकी इच्छासे नहीं, अपितु आत्मतोष ही उसका प्रतिफल है। स्वयं जाकर दिया गया दान उत्तम और अपने यहाँ बुलाकर दिया गया दान अधम होता है।

दानसे कल्याण

(साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम० ए०)

सनातन हिन्दू-संस्कृतिमें मानवके आत्मकल्याणके लिये जप, तप, यज्ञ, ध्यान, अर्चना, सेवा, वन्दना, स्वाध्याय आदि कई साधन ऋषि-मुनियोंने शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं, परन्तु कलियुगमें दानयज्ञको सबसे सुगम साधन बतलाया गया है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण॥

(रा०च०मा० ७।१०३ (ख))

कलियुगमें दान देनेमात्रसे कल्याण हो जाता है। दान देनेवाले सबसे बड़े दाता परमात्मा हैं। परमात्मा जीवको सबसे श्रेष्ठ मानव-योनि देते हैं—

पहिले दाता हरि भया तिनते पाई जिंद।

पीछे दाता गुरु भया जिन दाखे गोविंद॥

गोस्वामीजी कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(रा०च०मा० ७।४४।६)

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा०च०मा० ७।४३।७)

गीतामें भगवान् कहते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

भगवान् प्राणिमात्रके सुहृद् (बिना हेतु हित करनेवाले) हैं। इस भावको जो जान लेता है अर्थात् इस भावके अनुसार प्राणिमात्रका बिनाहेतु हित करता है, उसको परम शान्ति मिलती है अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। उस मानवका सदाके लिये कल्याण हो जाता है।

परमात्मा जीवमात्रकी गर्भकालमें एवं शिशु-अवस्थामें रक्षा एवं भरण-पोषण करते हैं। मानवको भी सबकी रक्षा एवं पालन-पोषण करनेके लिये दया-भाव रखना जरूरी है—

दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।

तुलसी दया न छाँड़िये जब लागि घट में प्रान॥

जब प्राणिमात्रके प्रति हितकी भावना तथा परपीडासे

करुणाविगलित हृदयमें त्यागभाव आयेगा तो उससे दान देनेकी प्रवृत्ति हो जायगी। दाण् दाने दा धातु दान अर्थात् देनेके अर्थमें होती है। दान मानवका स्वाभाविक कर्तव्य है, उसका उसे सदा पालन करना चाहिये।

दान दिया जानेवाला धन स्वयंद्वारा उपार्जित हो तथा टैक्स-चोरी इत्यादि दोषोंसे रहित हो एवं शुद्ध कमाईका हो। ऐसा दान निष्काम भावसे देनेपर ही कल्याण करनेवाला होता है। 'देशे काले च पात्रे च' का भाव है—अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प, अग्निप्रकोप, रोगादिका प्रकोप, भूखा, रोगी, अतिवृद्ध आदि अवस्थामें अन्न, जल, वस्त्र, औषध, आवास, अन्य आवश्यक सामग्री जैसे—जूता, छाता, सुई-डोरा, टार्च, यष्टिका आदि द्रव्योंको दानमें देना चाहिये। अन्न, जल, औषधमें पात्र-कुपात्र नहीं देखना चाहिये। गरीब परिवारकी कन्याका विवाह करना, गरीब छात्रोंको पुस्तक, विद्यालय-फीस, वस्त्र आदि देना, गरीब वृद्धोंकी अन्न-जल, वस्त्र, औषध आदिसे सेवा करना, त्यागी, संत-महात्मा, ब्राह्मण, गौ आदिकी सेवा करना, ऋणी व्यक्तिका निष्काम भावसे ऋण चुकाकर ऋणमुक्त करवाना चाहिये।

विद्यालय, औषधालय, वाचनालय, गोशाला, धर्मशाला, कुआँ, तालाब, प्याऊ, सत्संग-भवन, सामाजिक-भवन, तीर्थोंमें घाट आदिका निर्माण कराना चाहिये। बगीचा, वृक्ष आदि लगाना, भागवतकथा, सत्संग, नाम-जप, भगवन्नाम-संकीर्तन, धार्मिक साहित्यका प्रचार आदि समाजमें करारकर लोगोंको भगवान्के सम्मुख करना चाहिये। शास्त्रके अनुसार ब्राह्मणोंको दान देना, भोजन कराना, प्रेतमुक्तिके लिये गया-पिण्डदान, गंगा-यमुना आदि क्षेत्रोंमें दान देना, कुम्भ-ग्रहण आदि पर्वोंपर तीर्थोंमें दान देना, जप-अनुष्ठान कराना आदि सभी दान शुद्ध कमाईसे तथा निष्काम भावसे करे। दानमें भूमिदान, गोदान, अन्नदान एवं जलदानकी बहुत महिमा महाभारतमें कही गयी है। भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—

यावद् भूमेरायुरिह तावद् भूमिद एधते।

न भूमिदानादस्तीह परं किञ्चिद् युधिष्ठिर॥

(महा० अनु० ६२।४)

सभी कष्टोंको हर लेता है।

दानका महत्त्व—

भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसम्भवम् ।

दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत् ॥

अर्थात् पापके कारण नरक भोगना पड़ता है, निर्धनताके कारण पापका जन्म होता है, दान नहीं देनेसे निर्धनता आती है, अतः सदा दानपरायण होना चाहिये।

ग्रासादर्थमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि।

इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

अर्थात् घरमें माँगने आये याचकको अपने ग्रासमेंसे भी आधा दे देना चाहिये; क्योंकि अपने मनके अनुकूल धन कब किसके पास हो अथवा न हो। अतः धन होनेपर दान करूँगा; ऐसा सोचना मनुष्यकी भूल है; क्योंकि भविष्यमें शरीर तथा देनेका भाव रहे अथवा न रहे, धन भी मनके अनुसार हो अथवा न हो।

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात् ।

स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥

अर्थात् धनका संग्रह करनेसे गौरव नहीं बढ़ता है, बल्कि दान देनेसे गौरव बढ़ता है, जल देनेवाले मेघका स्थान ऊँचा है, परंतु जलका संचय करनेवाला सागर नीचे ही रहता है।

दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे सञ्चयो न कर्तव्यः ।

पश्येह मधुकरीणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥

अर्थात् यदि सम्पत्ति हो तो दान करना चाहिये तथा उसका उपभोग करना चाहिये, परंतु उसका संग्रह नहीं करना चाहिये; कारण कि मैं देखता हूँ कि मधुमक्खियोंके द्वारा एकत्र किया गया मधु दूसरे लोग ले जाते हैं।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति

दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।

परोऽपि बन्धत्वमपैति दानै-

दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥

अर्थात् दान देनेसे सभी प्राणी वशीभूत होते हैं, दान करनेसे शत्रुओंकी शत्रुता भी समाप्त हो जाती है, दान करनेसे परार्थ लोग भी अपने बन जाते हैं, इस प्रकार दान

अभयदान—

अमित्रमपि चेद् दीनं शरणैषिणमागतम् ।

व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः ॥

अर्थात् शत्रु भी यदि दीन होकर शरण पानेकी इच्छासे घरपर आ जाय तो संकटके समय जो उसपर दया करता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः ।

यच्चाभिलषितं दद्यात् तृषितायाभियाचते ॥

भाव यह है कि सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देना, संकटके समय उनपर अनुग्रह करना अभयदान है। जैसे—हिंसक पशु व्याघ्र आदिसे गाय, हिरण आदिको बचाना, बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्यको भयसे उत्पीड़ित करे तो उसे भयसे मुक्त कराना—अभय प्रदान करना है। इच्छानुसार याचकको दान देना तथा प्यासेको जल देना उत्तम दान है।

सन्तोंने दान-महिमामें कहा है—

चिड़ी चोंच भर ले गई नदी न घटियो नीर।

दान दिये धन ना घटे कह गये दास कबीर॥

हरिया दीया हाथ का आड़ा आसी तोय।

रामनाम कुँ सिवरंता सबै का सिद्ध होय॥

रामा माया राम की आड़ी मत दे पाल।

आवे ज्युँ ही जाणदे परमारथ के खाल ॥

हरि भज जीवन साफला पर उपकार समाय।

दादू मरणा जहाँ भला तहाँ पशु-पक्षी खाय॥

दादू दीया है भला दिया करो सब कोय।

घर में धरा न पाइये जे कर दिया न होय॥

श्रीदादूजी महाराज कहते हैं—सभीको दान देना चाहिये, दान देना श्रेष्ठ है। दान देनेसे सभीका भला होता है। यदि दान नहीं देंगे तो संसारमें सब वस्तुएँ होनेपर भी पुण्यके अभावमें नहीं मिलेंगी, जैसे रात्रिको घरमें सभी वस्तुएँ रखी रहती हैं, परंतु हाथमें दीपक न होनेसे प्रकाशके अभावमें वस्तुएँ होनेपर भी नहीं मिलती हैं।

सबसे बड़े दानी भगवान् तथा उनके भक्त हैं।

भक्तके भावके वशमें होकर भगवान् भक्तको उसके
भावके अनुसार अपने-आपको भी दे देते हैं। जैसे—
arma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh
सखुबाईके यहाँपर स्वयं सखुबाई बनकर रहे। एकनाथजीके



यहाँ भी श्रीखण्डिया नौकर बन गये।

भगवान्‌के भक्त भी परम उदार होते हैं; क्योंकि वे साधकका अज्ञान दूर करके भगवान्‌का दर्शन करा देते हैं। दुःखनिवृत्ति करके सदाके लिये परम सुखी बनाकर परमानन्द देकर कल्याण कर देते हैं।

भागवतमें गोपियोंने कहा है—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरिडितं कल्मषापहम्।

श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(१०।३१।९)

हे प्राणेश्वर! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है। वह

आपकी विरह-ज्वालामें जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान देती है, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान किया है, उसके श्रवण-कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। जो श्रवणमात्रसे ही प्रेमरूपी परम सम्पत्तिका दान करती है, ऐसी अत्यन्त विस्तृत कथाका पृथ्वीपर जो कीर्तन-गान करते हैं, वे जगत्‌में सबसे बड़े दानी लोग हैं। यह तुम्हारी लीला-कथाकी महिमा है। तुम्हारे दर्शनकी महिमा तो अवर्णनीय है।

अतः मानवको जगत्‌के हित एवं आत्मकल्याणार्थ शास्त्रके अनुसार एवं सन्तोंके वचनानुसार अपना कर्तव्य समझते हुए निष्काम भावसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रतिदिन दान करते रहना चाहिये।

सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दान करो

(श्रीभगवत्‌प्रसादजी विश्वकर्मा)

आजका युग अर्थप्रधान हो गया है। हर तरफ पैसा कमानेकी होड़-सी लगी हुई है। विश्वके बड़े देशोंमें भी भ्रष्टाचारका खेल हो रहा है। लोगोंके पास धन-सम्पत्तिका अम्बार लगता जा रहा है। चारों ओर झूठ, बेईमानी, लूटपाट, धोखाधड़ी, हत्याका साम्राज्य छाया हुआ है। परंतु बेईमानीसे कमायी हुई धन-दौलत तो यहीं छोड़कर जाना होगा, इस बातका ज्ञान किसीको नहीं है।

वास्तवमें धनका उपयोग कैसे किया जाय—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पहलेके समयमें लोग अपने धनका उपयोग कुआँ, बावली, धर्मशाला, तालाब, मन्दिर आदि बनवाकर महाशयता प्राप्त करते थे और धनका सही उपयोग भी हो जाता था, परंतु आज व्यक्ति धन जोड़नेमें लगा है और अधिक-से-अधिक कमाकर रखना चाहता है; ताकि उसकी सात पीढ़ी उस धनको खाती रहे। वास्तवमें बात यह है कि ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ लगातार बढ़ता ही जाता है—‘जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।’

मनुष्यको अपने जीवननिर्वाहहेतु पैसा कमाना तो आवश्यक है। इसके अभावमें आदमीका गुजारा नहीं हो सकता। देशमें ऐसे कितने गरीब तबकेके लोग हैं, जो रोज

कुआँ खोदते हैं और रोज पानी पी पाते हैं अर्थात्‌ बड़ी मुश्किलसे गुजारा हो पाता है। रुपया-पैसा साधनमात्र है, साध्य नहीं।

आजकल लोग करोड़ों रुपये कमाते हैं, परंतु एक कौड़ी भी धर्मकार्योंमें लगानेकी सोचतेतक नहीं। हमारे यहाँ भी पाश्चात्य संस्कृतिका प्रभाव पड़ रहा है। लोगोंके द्वारा ऐशो-आराममें, दिखावेमें आमदनीका काफी पैसा फूँका जा रहा है। अनैतिक ढंगसे कमाये धनका परिणाम भी देखनेमें आता है कि जगह-जगह छापा पड़ रहा है; क्योंकि वहाँ अनुपातसे अधिक धन, सम्पत्ति, जवाहरात आदि पाया जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि आयसे अधिक रुपया-पैसा, सोना-चाँदी लोगोंने बटोर रखा है। दूसरी ओर गरीब तबकेके लोगोंको खानेके लाले पड़े हुए हैं। इस तरह अमीर और अधिक अमीर होता जा रहा है और गरीबोंके आँसू पोंछनेवाला कोई नहीं है।

भोगमें सुख तो है, पर रस नहीं है। जो रस उदारतामें है, वह भोगमें नहीं है। उदार होनेके लिये हमें हृदयके द्वार खोलकर देखना होगा कि हम क्या कर सकते हैं। वैसे भी मनुष्यको अपनी शुद्ध कमाईका दस प्रतिशत तो दान कर ही देना चाहिये। एक अंग्रेज कवि वाल्टेयरने भी ठीक

अपनी आँखों देखिये, यों कथि गये कबीर॥

कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः ॥

अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥



दानधर्मके आदर्श चरित एवं प्रेरक प्रसंग

भगवान् द्वारा प्रदत्त दानके कुछ रोचक प्रसंग

(स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)

शास्त्रोंमें दानकी अपार महिमाका प्रतिपादन है। दान यदि कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर दिया जाय, तो अन्तःकरण पवित्र होता है, इसीलिये दानको आत्मशुद्धिका श्रेष्ठ साधन बताया गया है। किसी अभावग्रस्तको—जरूरतमन्दको उसके अभाव या आवश्यकताकी आंशिक अथवा पूर्णपूर्तिके लिये कुछ देना दान कहलाता है। इसका दयासे, संवेदनशीलतासे तथा उदारतासे गहरा सम्बन्ध है। देनेका सामर्थ्य होनेपर भी हरेकका स्वभाव देनेका नहीं होता। गाँवमें तोतोंको यह बोलना सिखाया जाता था—

‘लटपट पंछी चतुर सुजान, सब का दाता श्री भगवान्।’
रहीमजी किसी जरूरतमन्दको देकर सिर झुका लेते। किसीने कारण पूछा? कहा—

देनहार कोउ और है देत रहत दिन रैन।
लोग भरम मो पै करें या ते नीचे नैन॥
कबीर साहिबकी वाणी भी ऐसा ही सन्देश देती है—
न कुछ किया न कर सका न कुछ किया शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया कहत कबीर कबीर॥

(१)

भगवान् अपनी दयालुताके कारण जीवको सदा कुछ देते ही रहते हैं और समर्थ मनुष्यको यह सन्देश देते हैं कि तुम भी लाचार और विवश प्राणियोंको तन-मन और धनसे कुछ देकर उनके इस कार्यमें सहभागी बनो, यहाँ इसी भाव-बोधकी कुछ घटनाएँ प्रस्तुत हैं—

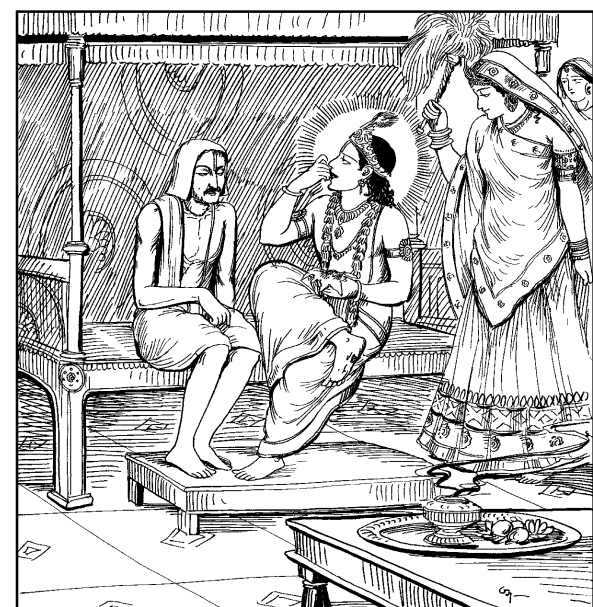
बहुत समय पहलेकी बात है—एक सन्त अन्य साथियोंके साथ बदरीनाथजीके दर्शनार्थ जा रहे थे। मार्गमें पाचन बिगड़ गया, कई बार मल-त्यागके लिये रुकना पड़ता। साथियोंको असुविधा होने लगी, धीरे-धीरे वे साथ छोड़ आगे बढ़ने लगे। सन्त प्रतिदिन दुर्बल होते गये। अन्ततः जगलम एक छोटी-सी गुफा में गये। इतना कर

होते हुए भी रामनाम-स्मरण सतत चलता रहा। मन-ही-मन प्रभुसे अरदास की—‘यदि यही तेरी इच्छा है तो यही पूर्ण हो, रोग-रूपमें तेरा हार्दिक स्वागत है।’ फरियाद करते-करते आँख लग गयी। अगले दिन सुबह ही एक वृद्ध हाथमें दही-भातका कटोरा और दूसरेमें दवाईकी पुड़िया लिये पधारे, बोले—‘यह खा लो, जल्दी ठीक हो जाओगे।’ सन्तने वृद्धकी ओर ध्यानसे देखा, पहचाननेकी कोशिश की, पर निष्फल। भारी कमजोरीके कारण दृष्टि धुँधली थी। दवा-दही-खिचड़ी खा ली। वृद्धने कहा—‘कल फिर आऊँगा, तीन दिनकी अवधि है, पूरा कर लो तो पूर्णतया स्वस्थ हो जाओगे।’ सन्त निरन्तर राम-राम भी जपते रहते तथा सोचते भी रहते—यहाँ सेवा-दान करनेवाला कौन है यह? आखिर पूछ ही लिया—‘कौन हैं आप?’ ‘पहले ठीक हो जाओ, फिर पूछना—लो, दवाई खा लो।’ ‘नहीं, पहले बताओ।’ ‘न बताऊँ तो?’ ‘मैं दवाई न खाऊँ तो?’ ‘मत खाओ, मैं जाता हूँ,’ ऐसा कहकर वृद्ध चले गये। थोड़ी देर बाद लौट आये कहा, ‘तुम दवा खा लो तो मैं जाऊँ।’ सन्तने कहा—‘आप मेरे प्रश्नका उत्तर दो तो मैं दवा खाऊँ।’ मधुर वार्तालापपर वृद्ध मुसकराये और चतुर्भुजरूपमें प्रकट हो गये। सन्त श्रीचरणोंपर मस्तक नवाकर बोले, ‘इतने सुनसान, निर्जन वनमें आपके अतिरिक्त कौन आ सकता है? हे प्रभु! क्या आप स्वयं दौड़-दौड़कर इसी प्रकार भक्तोंको सेवा-दान देते हैं?’ ‘प्रिय भक्त! जब कोई मिल जाता है, तो उसके मनमें सेवाकी प्रेरणा भर देता हूँ, परंतु यदि कोई नहीं मिलता तो स्वयं सेवाके लिये उपस्थित हो जाता हूँ।’ मनमोहक, रोचक वार्तालाप, जीवनको परमानन्दसे परिपूरित करके प्रभु अन्तर्धान हो गये। परमेश्वरके इस आश्वासनसे तथा सन्त रहीम एवं कबीरके उक्त कथनोंसे यही सुस्पष्ट होता है—

बाल्यावस्थाके सखा सुदामा अपने प्रिय मित्र
द्वारकाधीशके दर्शनार्थ पधारे हैं। दरिद्र हैं, अतः द्वारपाल
भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेसे रोकता है, परंतु ‘सुदामा’ शब्द
सुनते ही प्रभु भागे और उन्हें अपने साथ लाकर
सिंहासनपर आसीन कर लिया। पछा—‘भाभीने क्या भेजा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

है मेरे लिये?’ रानियाँ उपहास करें—यह क्या लायेगा?
बगलमेंसे पोटली छीन, उसमेंसे तन्दुल (चिउड़े) चबाकर



मित्रकी दरिद्रताका भक्षण कर लिया। मस्तकपर लिखे कुलेख—
‘श्रीक्षय’ अर्थात् दारिद्र्यको सुलेखमें बदल दिया—‘यक्षश्री’
कर दिया। ‘सुदामा! तेरे पास इतनी पूँजी-सम्पत्ति होगी,
जितनी कुबेरके पास।’ सुदामापुरी भी वैसी ही भव्य एवं सुन्दर
जैसी द्वारकापुरी। कैसे विलक्षण दाता हैं श्रीभगवान्!

(୭)

यह सर्वविदित है, सर्वमान्य है तथा सभीका अनुभव भी है कि बन्देके देनेसे अल्पकालिक राहत तो मिलती है, परंतु स्थायी शान्ति तो तभी मिलती है, जब परमात्मा अपनी मंगलमयी कृपासे स्वयं देते हैं। इस रोचक एवं सुन्दर आख्यायिकासे यह यथार्थता भलीभाँति निरूपित होती है—

एक मारवाड़ी सेठका विपुल सम्पत्ति छोड़कर निधन हुआ। इकलौता पुत्र दुराचारी निकला, कुव्यसनो एवं कुकृत्योंमें सारा धन बरबाद कर दिया। कंगाल-सा हो गया, घरमें भोजनके लिये भी कुछ न बचा। एक दिन पत्नीने कहा— ‘स्वामिन्! कुछ मैं करती हूँ, कुछ आप करें तो दो समयकी रोटी हमें मिल जाय करेगी।’ स्त्रीने सूत कातने, आटा पीसने एवं धान कूटनेका काम शुरू किया और पति जंगलसे घास-लकड़ी काटने तथा मजदूरी करने लगा। कड़ी मेहनतका तनिक भी अभ्यास नहीं था, एक दिन थका-माँदा, भाग्यके ऐसे क्रूर परिवर्तित हथकण्डे देखकर फूट-फूटकर रोने

लगा। उसी समय श्रीभगवान् लक्ष्मीजीके संग विचरते हुए निकले। बिलखते हुए युवकको देख लक्ष्मीजीने कहा—‘प्रभु! देखो, मेरे बिना जीवका कैसा हाल होता है, जब पास थी, तब क्या था, अब नहीं हूँ, तब क्या है?’ श्रीनारायणने कहा—‘नहीं लक्ष्मी! ये दुर्दशा तेरे कारण नहीं, मेरी कृपा सिरसे उठ जानेके कारण है। यदि तू नहीं मानती तो इसे पुनः धनी बनाकर देख ले।’ लक्ष्मीने बोझ उठाये युवकके आगे दो लाल (माणिक) फेंके, युवकने उन्हें जेबमें डाला, रास्तेमें प्यास बुझानेके लिये नदी-किनारे झुका, लाल पानीमें गिर गये। खानेवाली वस्तु समझ मछली उन्हें निगल गयी। खाली हाथ घर, पत्नीसहित पश्चात्ताप। अगले दिन पुनः जंगलमें, आज माँ लक्ष्मीने मोतियोंकी माला फेंकी, उठाकर पगड़ीमें रखी, स्नानके लिये नदीमें उतरते समय पगड़ी उतारकर रख दी, हारसहित पगड़ी चील उठाकर उड़ गयी। पुनः खाली हाथ घर। तीसरे दिन फिर वनमें, आज अशर्फियोंकी थैली रखी माँने, उठायी और सीधे घर। पत्नी घर नहीं, थैली रखकर उसे बुलाने गया। देर लगी, पड़ोसिन उठाकर ले गयी। पुनः खाली, चौथे दिन जंगलमें घास काटते देख लक्ष्मीने कहा—‘हे प्रभो! मैं हार गयी, अब आप ही कुछ करें।’ भगवान्ने ताँबेके दो सिक्के फेंके, युवकने माथेपर लगाये। घर लौटते समय मछुआरेसे एक पैसेकी मछली खरीदी। एक पेड़पर चढ़ा, सूखी लकड़ीकी टहनी काटने लगा, तो एक घोंसला दिखा, उसमें हार-सहित अपनी पगड़ी दिखी, उठायी, प्रसन्नतापूर्वक घर पहुँचा, ऊँचे स्वरसे पुकारा—‘सुलक्षणी, सुलक्षणी! जो खोई थी, मिल गयी।’ पड़ोसिनने आवाज सुनी, अपमान-दण्डसे भयभीत, मिलनेके बहाने आयी और थैली वापस रख गयी। दोनों प्राणी अपार हर्षित, भोजनकी तैयारी, मछली काटी, पेटसे लाल निकले। आनन्द-ही-आनन्द छा गया। परमेश्वर-कृपाका चमत्कार।

संसारसे तो भीख मिलती है, वस्त्र मिलते हैं, भोजन मिलता है, धन-भूमि एवं अन्य पदार्थ मिलते हैं। संसारी दान तो दे सकते हैं, परंतु दीनता-दरिद्रता नहीं मिटा सकते, जन्म-जन्मकी भूख-प्यास नहीं मिटा सकते, वह राम-कृपासे सब कुछ दे सकनेवाले उस दाताके देनेसे ही मिटेगी। अतएव माँगना है तो भगवान्‌से माँगो, अन्यत्र माँगोगे तो माँगनेकी आदत पड़ जायगी, भिखमंगे बन जाओगे। भीख माँगना व्यवसाय बन जायगा। प्रभुसे माँगोगे तो माँगनेकी इच्छा ही मिट जायगी।

दानके प्रेरक-प्रसंग

१. अहंकारका दान

एक महात्मा किसी धार्मिक राजाके महलमें पहुँचे। उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले—‘आज मेरी इच्छा है कि मैं आपको मुँहमाँगा उपहार दूँ।’ महात्माने कहा—‘आप स्वयं ही अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु मुझे दान कर दें, मैं क्या माँगूँ?’ राजाने कहा—‘मैं आपको राजकोष अर्पित करता हूँ।’ महात्माने कहा—‘वह तो प्रजाजनोका है, आप तो मात्र संरक्षक हैं।’ राजाने दूसरी बार कहा—‘महल-सवार आदि तो मेरे हैं, आप इन्हें ले लो।’ महात्मा हँस पड़े और बोले, ‘राजन्! आप क्यों भूलते हैं, यह सब प्रजाजनोका ही है, आपको कार्यकी सुविधाके लिये दिये गये हैं।’ अब राजाने कहा—‘मैं यह शरीर दान कर दूँगा, यह तो मेरा है।’ महात्माने कहा—‘यह भी आपका नहीं है, एक दिन आपको इसे भी छोड़ना होगा। यह पंचतत्त्वमें विलीन हो जायगा, इसलिये इसे आप कैसे दे पायेंगे?’ अब राजा चिन्तामें पड़ गया। महात्माने कहा—‘राजन्! मेरी एक बात मानें। आप अपने अहंकारका दान कर दें। अहंकार ही सबसे बड़ा बन्धन है।’ अहंकार दानमें देकर राजा दूसरे दिनसे अनासक्त योगीकी भाँति रहने लगा, उसके जीवनमें नये आनन्दकी वर्षा होने लगी।

२. सबसे बड़ा दान

पट्टन साम्राज्यके महामन्त्री उदयनके पुत्र बाहड़ शत्रुंजय तीर्थका पुनरुद्धार कराना चाहते थे ताकि दिवंगत पिताकी अपूर्ण इच्छा पूरी कर सकें। तीर्थोद्धारका कार्य प्रारम्भ हुआ तो जनताने भी मन्त्रीसे अनुरोध किया, ‘आप समर्थ हैं, लेकिन हमें भी इस पुण्यकार्यमें भाग लेनेका अवसर प्रदान करें।’

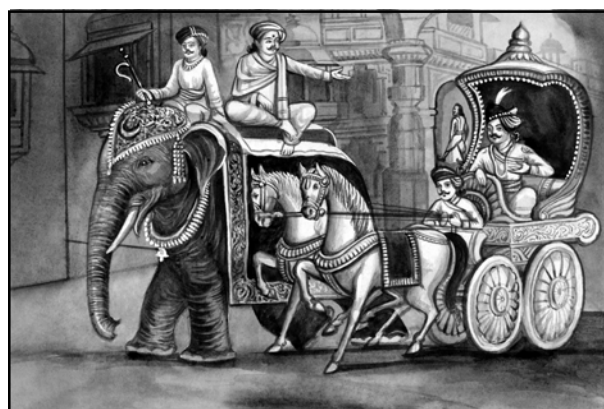
जनताकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। सबने अपनी-अपनी शक्ति और श्रद्धाके अनुसार धन दिया। धीरे-धीरे तीर्थका उद्धार हो गया। अन्तमें आर्थिक सहायता देनेवालोंकी नामावली घोषित की गयी। नामावली देखकर लाखों मुद्रा देनेवाले अत्यन्त चकित हुए; क्योंकि सहायता देनेवालोंमें भीम नामक एक मजदूरका नाम सबसे पहले था। उसने केवल सात पैसेकी सहायता दी थी। मन्त्रीने सम्पन्न लोगोंका रोष लक्षित कर लिया और सहज भावसे बोले—

‘भाइयो! मैंने स्वयं और आप सबने तीर्थके उद्धारमें जो कुछ दिया है, वह हजारों जनका महज एक ही भाग है।

लेकिन भीम, पता नहीं कितने दिनोंके परिश्रमके बाद ये सात पैसे बचा पाया था, उसने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया है, अतः मेरे विचारसे उसका दान ही सबसे बड़ा दान है। इसलिये यह निर्णय करनेमें मुझसे भूल तो नहीं हुई?’ निर्णयसम्बन्धी इस विवेचनके बाद कोई ऐसा नहीं था, जो आपत्ति उठा सकता।

३. दानका फल

गर्मीके दिन थे, धूप तेज थी, पृथ्वी जल रही थी, महाराज भोजके राजकवि किसी आवश्यक कार्यको सम्पन्न करके नगरकी ओर लौट रहे थे, मार्गमें उन्होंने देखा एक दुर्बल मनुष्य नंगे पैर लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। उसके पैरोंमें सम्भवतः छाले पड़ गये थे, बार-बार दीर्घ श्वास लेता और दौड़नेका प्रयत्न करता, किंतु अपनी दुर्बलताके कारण चल नहीं पाता। कविके सुकुमार हृदयसे यह देखा नहीं गया। आज वे भी पैदल ही थे, परंतु उस पुरुषके पास जाकर उन्होंने अपने जूते उतार दिये और बोले—‘तुम इन्हें पहन लो।’ कभी नंगे पैर चलनेका अभ्यास नहीं था, कविको लगा कि वे मार्गमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ेंगे। उनके पैरोंमें शीघ्र ही छाले पड़ गये, परंतु वे एक दुःखी प्राणीकी सेवा करके प्रसन्न थे। उसी समय राजाके हाथीको महावत उधरसे लेकर आ रहा था। राजकविको वह पहचानता था, उसने उन्हें हाथीपर बैठा लिया। संयोग ऐसा हुआ कि उसी समय राजा भोज भी नगरमें निकले थे। नगरमें प्रवेश करते ही कवि और



नरेशकी भेंट हो गयी। नरेशने हँसते हुए पूछा—‘आपको मेरा यह हाथी कहाँ मिल गया?’ कविने उत्तर दिया—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

‘राजन्! किसी जरूरतमन्दके लिये मैंने अपने पुराने जूते उतार दिये, उस पुण्यसे इस हाथीपर बैठा हूँ। जिस द्रव्यका दान नहीं हुआ, उसे तो व्यर्थ ही नष्ट हुआ समझें।’ कविकी यह वाक्पटुता उन्हें अच्छी लगी। उदार नरेशने हाथी कविको ही दे दिया।

४. दानका महत्त्व

गौतम बुद्धने मगधकी राजधानीमें कई दिन उपदेश दिये। जब वे मगधसे आगे बढ़ने लगे तो कई भक्तगण उन्हें भेंट देनेके लिये आये। एक वृक्षके नीचे बने हुए ऊँचे चबूतरेपर शान्तचित्त बुद्ध बैठ गये। वे हर भक्तकी भेंट स्वीकार कर रहे थे, उसी समय धोती लपेटे एक वृद्धा आयी। उसने काँपती हुई आवाजमें कहा—भगवन् मैं एक गरीब बुढ़िया हूँ, मेरे पास आपको भेंट देनेके लिये अधिक कुछ भी नहीं है, मुझे आज एक छोटा-सा आम मिला, तभी पता चला कि तथागत आज दान ग्रहण करेंगे। अतः मैं वह आम आपके चरणोंमें भेंट करने आयी हूँ। भगवन्!

यही मेरी एकमात्र सम्पत्ति है। कृपाकर इसे आप स्वीकार करें। गौतम बुद्धने अपनी अंजलिमें वह छोटा-सा आम इस प्रकार प्रेम और श्रद्धासे रख लिया, मानो कोई बहुत बड़ा रत्न हो। वृद्धा सन्तुष्ट भावसे लौट गयी। मगधके राजा बिम्बसार यह देखकर चकित रह गये। उन्हें समझमें नहीं आया कि भगवान् बुद्ध वृद्धाका आम प्राप्त करनेके लिये आसन छोड़कर नीचेतक हाथ पसारकर क्यों आये? उन्होंने भगवान् बुद्धसे पूछा—भगवन्! इस वृद्धामें और इसकी भेंटमें ऐसी क्या विशेषता है? बुद्ध मुसकुराते हुए बोले—राजन्! इस वृद्धाने अपनी सम्पूर्ण संचित पूँजी मुझे भेंट कर दी है, जबकि आप लोगोंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका केवल एक छोटा भाग ही मुझे भेंट किया है, वह भी दानके अहंकारमें डूबे हुए आप अपनी बग्धी-घोड़ेमें चढ़कर आये और देखिये उसके मुखपर कितनी करुणा, कितनी नम्रता थी। युगों-युगोंके बाद ऐसा दान मिलता है राजन्!

[प्रेषिका—सुश्री उमा ठाकुर]

प्रेरक-प्रसंग—

दानकी साधना

एक नगरमें एक सन्त रहते थे। वे प्रसन्न रहते और सात्त्विक जीवन जीते थे। अपनी जीविका चलानेके लिये टोपियाँ सिलकर बेचते और जो भी आमदनी होती, उसमेंसे एक पैसेकी बचत करके दान कर दिया करते थे।

सन्तकी कुटियाके सामने ही एक सेठजी रहते थे। सन्तको इस तरह दान करते देख सेठजीके मनमें भी एक बात आयी और उन्होंने भी अपनी कमाईसे कुछ राशि निकालकर अलग रखनी शुरू कर दी। जब कुछ राशि जमा हो गयी तो उन्होंने सन्तसे जाकर पूछा—‘महाराज! मैं राशिका क्या करूँ?’ सन्त बोले—‘इसे दीन-दुःखियोंको बाँट दो।’

सन्तके कहे अनुसार सेठजीने वह राशि एक गरीब दुर्बल व्यक्तिको दे दी। सेठजीको आशीर्वाद देता हुआ वह चला गया। सेठजीने वह दान सहज रूपसे नहीं दिया था, केवल सन्तको दान देते देखकर उनके मनमें ऐसी भावना जाग्रत् हुई थी। इसलिये सेठजी उस व्यक्तिके पीछे यह देखने चल पड़े कि आखिर वह व्यक्ति मेरे दिये हुए पैसोंको किस तरह खर्च करता है। सेठजीने देखा कि उस व्यक्तिने उन रुपयोंको गलत वस्तुओंके खरीदनेमें खर्च

किया। सेठजीने जब अपनी राशिका इस तरह दुरुपयोग होते देखा तो उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने पूरी बात सन्तको आकर बतायी। तब सन्तने उन्हें अपनी आमदनीका एक पैसा देकर कहा—जाओ, इसे किसी आवश्यकतावालेको दे देना और कल अपनी बातका उत्तर लेकर आना। सेठजीने वह एक पैसा भिक्षा माँग रहे एक व्यक्तिको दे दिया और परिणाम जाननेके लिये वे उत्सुकतासे उसके पीछे चल दिये। उन्होंने देखा कि उस व्यक्तिने अपनी झोलीसे एक चिड़िया निकाली एवं उसे खुले आसमानमें छोड़ दिया और उस एक पैसेसे चने खरीदकर खाये। सेठसे रहा न गया, आगे बढ़कर उन्होंने उस भिखारीको रोका और पूछा ‘तुमने ऐसा क्यों किया?’ वह भिखारी बोला—‘मैं भूखा था, आज कुछ भिक्षा न पाकर मैं चिड़िया पकड़कर लाया था कि भूनकर खा लूँगा, लेकिन जब मुझे एक पैसा मिल गया तो मैंने सोचा कि मैं हत्या क्यों करूँ?’ यह पूरी घटना भी सेठजीने सन्तको सुना दी और दोनों घटनाओंका समाधान जानना चाहा। सन्तने कहा—‘वत्स! महत्ता केवल दान देनेकी नहीं होती। हमने

गया, उसने उस धनका उचित उपयोग किया। दान करना एक पुण्य कार्य है। दान वह है, जो दानदाता विनम्र और निःस्वार्थ होकर देता है। अपने यशके लिये दिया गया दान, दान न होकर एक व्यवसाय होता है।' (मानस वन्दन) [प्रेषक—श्रीजगदीशचन्द्रजी सोनी]

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

(१)

विद्यादान न करनेसे
ब्रह्मराक्षसकी योनि मिली

पुराणोंमें यह भी कहा गया है कि प्रत्येक विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ ब्राह्मणका परम धर्म है कि वह अपने ज्ञानका, विद्याका दान करता रहे। जो विद्वान् ब्राह्मण अपने इस धर्मका, कर्तव्यका पालन नहीं करता, उसे ब्रह्मराक्षस बनना पड़ता है।

श्रीरामानुजाचार्य श्रीयादवप्रकाश नामक परम विद्वान् तथा विरक्त गुरुके चरणोंमें बैठकर विद्याध्ययन करते थे। उन्हीं दिनों कांचीनरेशकी पुत्री अचानक प्रेतबाधासे पीड़ित हो गयी। अनेक मन्त्रज्ञ बुलाये गये, किंतु उसे प्रेतसे मुक्ति नहीं मिली। नरेशको पता चला कि पण्डितराज यादवप्रकाशजी यदि कृपा करें तो राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्ति मिल सकती है। राजाने उन्हें आदरसहित कांची बुलवाया। अपने शिष्य रामानुजको साथ लेकर वे राजमहल पहुँचे। पण्डितजीने मन्त्र-प्रयोग किया। प्रेत बोला—‘मैं सामान्य प्रेत नहीं हूँ, तू यदि जीवनभर भी मन्त्र-प्रयोग करे तो भी मेरा कुछ न बिगाड़ पायेगा।’ श्रीरामानुजाचार्यको देखकर प्रेत मुसकराया। रामानुजजीने मन्त्र पढ़ा। उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मणवेशधारी राक्षस सामने है। उन्होंने पूछा—‘ब्रह्मन्! आप तो ब्राह्मण हैं, विद्वान् हैं; फिर यह योनि क्यों भोगनी पड़ी?’ ब्रह्मराक्षसने रोते हुए कहा—‘मैंने शास्त्रोंका आदेश न मानकर विद्वान् होते हुए भी जीवनमें कभी विद्यादान नहीं किया। शास्त्रोंके वचनकी अवहेलनाके कारण ही मृत्युके बाद मुझे राक्षसयोनि मिली है। यदि आप मेरे मस्तकपर आशीर्वादका हाथ रख देंगे तो मैं इस योनिसे मुक्त हो जाऊँगा, रामानुजजीने

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेनेहेतुः धनविस्तरम् ।

धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥

रख देंगे तो मैं इस योनिसे मुक्त हो जाऊँगा, रामानुजजीने

संतजीने कहा—‘राजन्! जब मैं भिक्षा माँगने शहरमें आया तो मैंने देखा कि जगह-जगह दीवारोंपर, मन्दिरोंपर, शिलापट्टोंपर तुम्हारा नाम अंकित है। तुम्हारे नामका डंका बज रहा है। तुमने धन खर्च करके, दान करके सात्त्विक कार्य तो किया किंतु अपनेको ‘दानवीर’ दरशाकर, अहंकार प्रदर्शितकर अपने पुण्योंको क्षीण कर डाला है। नामकी, यशकी आकांक्षाने

तुम्हें बन्धनोंमें जकड़े रखा है, मुक्ति तथा शान्ति नहीं मिलने दी है। यही अशान्तिका मुख्य कारण है।

संतजीने उपदेश देते हुए कहा—धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि सात्त्विक दान वही होता है, जिसके पीछे कोई आकांक्षा न हो। नाम तथा कीर्तिकी आकांक्षासे मुक्त होते ही शान्ति मिल जायगी।

राजाने अपने नामके सभी पट्ट हटवानेका आदेश दे दिया।

(४)

दान स्वीकारनेवाला धन्यवादका पात्र है

पुराणोंमें लिखा है कि जो व्यक्ति किसीका दान स्वीकार करता है, सहायता स्वीकार करता है, वह उलटे दानदातापर कृपा ही करता है। यह मानना चाहिये कि उसने दान स्वीकार करके उसे पुण्य अर्जित करनेका, सेवाका सुअवसर दिया है।

बंगालके सुविख्यात विद्वान् पं० श्रीविश्वनाथ तर्कभूषणजीकी पावन स्मृतिमें उनके सुयोग्य पुत्र श्रीभूदेव मुखोपाध्यायजीने अपनी एक लाख साठ हजारकी सम्पत्ति दान करके ‘विश्वनाथ-ट्रस्ट’ की स्थापना की। इस ट्रस्टसे देशके सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणोंका चयन करके बिना आवेदनके ही उन्हें मनीआर्डरसे पचास-पचास रुपये भेजे जाते थे।

ट्रस्टके बाबूने वृत्ति पानेवालोंकी सूची बनायी। उसमें अंकित था—‘इस वर्ष जिन-जिन अध्यापकों तथा विद्वानोंको विश्वनाथवृत्ति दी गयी, उनकी नामावली।’

पं० श्रीभूदेव मुखोपाध्याय स्वयं परम शास्त्रज्ञ विद्वान् थे। वे जानते थे कि वृत्ति स्वीकार करनेवालोंके नामका उल्लेख आदरके साथ किये जानेमें ही दानकी सार्थकता है। उन्होंने बाबूसे कहा—इस सूचीके ऊपर लिखो—‘इस वर्ष जिन अध्यापकों, विद्वानोंने विश्वनाथवृत्ति स्वीकार करनेकी कृपाकर हमारे ट्रस्टको धन्य किया, उनकी नामावली।’

इस प्रकार दान तथा सहायता लेनेवालोंके प्रति भी कृतज्ञताकी भावना रखनेमें ही दानकी सार्थकता है।

(५)

सेनानायककी अनूठी दानशीलता

एक राज्यका शासक ब्राह्मणवर परम धर्मात्मा तथा प्रजापालक था। वह श्रेष्ठ तथा चरुसामर्थीका खुल्ला हाथ

दान देता था। वह प्रजाके लोगोंसे कहा करता था कि दूसरेकी सेवा-सहायतामें खर्च किया गया धन कभी समाप्त नहीं होता। दान किया धन कई गुना बढ़कर मिल जाता है।

राजाकी सेनाका उपनायक सत्त्वशील भी परम भगवद्भक्त था। वह निःसन्तान था। अपना तमाम वेतन धर्म-कार्यों तथा परोपकारपर खर्च कर देता था। एक बार उसे जंगलमें घूमते समय सोनेकी अशर्फियाँ मिलीं। वह उन्हें भी गरीबोंकी सहायताके काममें खर्च करने लगा। किसी ईर्ष्यालुने राजाके कान भर दिये कि उपसेनापति सत्त्वशीलको जंगलमें धन मिला था, उसे नियमानुसार राज्यके खजानेमें जमा किया जाना चाहिये था, किंतु सत्त्वशीलने ऐसा न करके उसे अपने पास रख लिया तथा वह उसे खुले हाथों बाँट रहा है। राजाने सत्त्वशीलको बुलवाया। पूछा—क्या तुम्हें जंगलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलीं? उनका तुमने क्या किया? सत्त्वशील राजाको गरीबोंकी झोपड़ियोंमें ले गया। राजासे कहा—‘आप इनसे पूछ लीजिये कि क्या मैंने उनकी कुछ सहायता की है?’ गरीबोंने उत्तर दिया—‘इन्होंने हमें वस्त्र, बर्तन एवं अनाज दिया था और कहा था कि राजाने अपनी ओरसे भिजवाया है।’

राजा समझ गया कि सत्त्वशीलने इस दानका स्वयं श्रेय न लेकर राज्यको श्रेय दिया है। राजाने उसकी ईमानदारी एवं दानशीलता देखकर उसे उपसेनापतिसे मुख्य सेनापति बनाकर उसका वेतन दोगुना कर दिया।

(६)

हरामकी कमाई ठीक नहीं

मुस्लिम संत अबू अली शफीक खुदाकी इबादतमें डूबे रहते थे। वे कहा करते थे—‘मनुष्यको ईमानदारीसे खून-पसीनेकी कमाईसे ही अपना एवं परिवारका भरण-पोषण करना चाहिये। समाजपर भार नहीं डालना चाहिये।’ उनकी कथनी-करनी एक थी। वे स्वयं कुछ समय मजदूरी करते थे और उससे हुई आयसे ही अपना भोजन तैयार करते थे।

एक धनाढ्य उनके उपदेशों तथा त्यागमय जीवनसे बहुत प्रभावित था। उसने एक दिन उन्हें मजदूरी करते देखा तो हतप्रभ रह गया। वह सायंकाल उनकी कुटीयामें पहुँचा

कई महाने बीत गये, अन्तमें भगवती सरस्वतीके कृपापात्र पण्डित वररुचि प्रतिष्ठानपुर पधारे। राजाकी चिन्ताका समाचार पाकर वे राजभवन पधारे और राजाको लेकर नगरसेठके घर गये। नगरसेठके नवजात पुत्रको राजाके सामने लाया गया। पण्डितजीके आदेशसे वह अबोध बालक सहसा बोल उठा—‘राजन्, मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। आपको सत्तू देनेके फलसे भीलका शरीर छोड़कर मैं नगरसेठका पुत्र हुआ हूँ और उसी पुण्यके प्रभावसे मुझे पूर्वजन्मका स्मरण भी है।’



विविध दानोंका स्वरूप

भगवान् शिवका मुक्तिदान

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम०ए०, पी०एच० डी०)

देवाधिदेव महादेव दानियोंमें अग्रगण्य हैं।^१ देना ही उनके मनको भाता है और याचकगण उन्हें बहुत सुहाते हैं।^२ उनके दानकी शैली बड़ी विचित्र है।^३ वे अल्पसे ही प्रसन्न हो जाते हैं तथा दिये जानेवाले दानके भावी परिणामोंकी परवाह किये बिना याचनासे कई गुना अधिक दे डालते हैं। इसी कारण उन्हें आशुतोष एवं अवढरदानी कहा जाता है।^४ भगवान् शिव भुक्ति एवं मुक्ति दोनों देते हैं। भोगोंको देते समय जहाँ भोलेनाथ याचककी पात्रतापर विचार नहीं करते, वहीं मुक्तिदान करते समय वे जीवोंमें किसी प्रकारका कोई भेदभाव नहीं रखते।

लोकमंगलकी भावनासे भावित भगवान् शिवद्वारा इस प्रकार निर्बाध मुक्तिदान करनेकी प्रशस्तस्थली है उनकी अपनी प्रिय नगरी काशी। भगवान् शिव यहाँ मरनेवाले प्रत्येक जीवको मुक्तिदान देकर भवबन्धनसे मुक्त कर देते हैं।^५ सहस्रों जन्मोंतक नाना प्रकारके जप-तप, यम-नियम एवं योगाभ्यासादि करते रहनेपर भी जिस मुक्तिकी प्राप्ति अनिश्चित रहती है,

वह मुक्ति काशीमें शिवकृपासे एक ही जन्ममें और बिना किसी प्रयत्नके (केवल मरनेमात्रसे) सहज ही मिल जाती है।^६

पुराणोंमें वचन मिलते हैं कि भगवान् शिव काशीमें मरनेवालोंको मुक्ति देनेमें पुण्यात्मा और पापात्मा तथा ज्ञानी और अज्ञानीमें कोई भेद नहीं करते। यहाँतक कि वे मृतकोंके जाति-धर्म या योनि आदिके प्रश्नपर भी कोई पक्षपात नहीं करते। भगवान् शिव काशीमें मरनेवाले पशु-पक्षी और कीटादिको भी मुक्ति प्रदान करते हैं।^७ काशीमें पृथ्वीपर, आकाशमें या जलमें चाहे कहीं भी मृत्यु हो और शुभाशुभ चाहे किसी भी कालमें मृत्यु हो, शिवकृपासे मृतकको मुक्ति मिलती ही है।^८ यहाँतक कि काशीमें सर्पदंशादिसे अपमृत्यु होनेपर भी मृतकको मुक्ति मिलती है।^९ काशीमें मणिकर्णिकादि तीर्थों या गंगातटपर ही नहीं अपितु सड़कोंपर, मल-मूत्रमें, चाण्डालके घरमें अथवा श्मशानसदृश अपवित्र स्थानोंमें मृत्यु होनेपर भी शिवजी कृपा करते हैं और मृतकको मुक्ति मिलती है।^{१०}

१-देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे। (विनय-पत्रिका ८)

२-(क) दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥ (विनय-पत्रिका ४)

(ख) जाहि दीन पर नेह....॥ (रा०च०मा० १।४ सो०) ३-बावरो रावरो नाह भवानी। (विनय-पत्रिका ५)

४-(क) औढर-दानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन करजोरें॥ (विनय-पत्रिका ६)

(ख) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (रा०च०मा० २।४४।८)

५-पुण्यानि पापान्यखिलान्यशेषं सार्थं सबीजं सशरीरमायै। इहैव संहत्य ददामि बोधं यतः शिवानन्दमवाप्नुवन्ति॥

(सन्तकुमारसंहिता, तीर्थसुधानिधि)

६-विना तपोजपाद्यैश्च विना योगेन सुव्रत। निःश्रेयो लभते काश्यामिहैकेनैव जन्मना॥ (काशीखण्ड पू० २२।११२)

७-ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः। कृमिस्तेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥

कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥ चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।

शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः॥ (मत्स्यपुराण १८१।१९-२१, कूर्मपुराण १।२९।३१-३२)

८-(क) भूमौ जलेऽन्तरिक्षे वा यत्र क्वापि मृतो द्विजः। ब्रह्मैकत्वं च प्राप्नोति काशीशक्तिरुपाहिता॥ (पद्मपु० तीर्थसुधानिधि)

(ख) सर्वस्तेषां शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रियन्ति ये॥ न तत्र कालो मीमांस्यः शुभो वा यदि वाशुभः। (मत्स्यपु० १८४।७२-७३)

९-सर्पाग्निदस्युप्रभृतिभिर्निहतस्य जन्तोः अपि अत्र मुक्तिः। (पद्मपु० त्रिस्थलीसेतु)

१०-रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो इहावसाने लभतेव मोक्षम्॥

(सन्तकुमारसंहिता, तीर्थसुधानिधि)

भगवान् शिवकी यह दानशीलता श्रुतियों-स्मृतियों एवं पुराणों आदिमें सर्वत्र विख्यात है। श्रुतियाँ कहती हैं—**काश्यां मरणान्मुक्तिः**। शिवसंहितामें कहा गया है कि काशीश्वर भगवान् शिव श्रीराममन्त्रसे स्वयं पवित्र होकर काशीमें जीवोंको सदा मुक्त करते हैं। पद्मपुराणमें भगवान् शिवने कहा है कि मरनेके समय मणिकर्णिका घाटपर गंगाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गंगाजलमें पड़ा रहता है, उसको मैं आपका तारक मन्त्र

१४-तारकं दीर्घानलं बिन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनर्मायां नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतद् ब्रह्मात्मिकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्। अकारः प्रथमाक्षरो भवति। उकारो द्वितीयाक्षरो भवति। मकारस्तृतीयाक्षरो भवति। अर्धमात्रश्रुतार्थाक्षरो भवति। बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति। नादः षष्ठाक्षरो भवति। तारकत्वात्तारको भवति। तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि। तदेवोपासितव्यमिति ज्ञेयम्। गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात्सन्तारयतीति। तस्मादुच्यते षडक्षरं तारकमिति। य एतत्तारकं ब्रह्म ब्राह्मणो नित्यमधीते। स पाप्मानं तरति। स मृत्युं तरति। स ब्रह्महत्यां तरति। स भ्रूणहत्यां तरति। स वीरहत्यां तरति। स सर्वहत्यां तरति। स संसारं तरति। स सर्वं तरति। सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति। स महान्भवति। सोऽमृतत्वं च गच्छति। (रामोत्तरतारोपनिषद् २)

१६-यह प्रसिद्ध है कि व्रतादिके बन्धनोंके अतिरिक्त काशीमें कोई भी प्राणी भूखा नहीं सोता।

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥



काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओंका बलिदान करके उपासना करनी चाहिये। यही शास्त्रोक्त बलिदान-रहस्य है।

‘बड़ो दान सम्मान’

(पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)

चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथजीके चारों कुमार अपने बालसखाओंके साथ अब राजसदनसे बाहर भी गलियोंमें गोली, भमरा और लट्ठू, डोरी खेलने आने लगे हैं। अहा—

सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध-खोरि, गोली भौरा चक डोरि,
मूरति मधुर बसै तुलसीके हियरे।

(गीतावली १।४३।३)

अवस्था अभी पाँच-सात वर्षकी ही है। आज बालकोंका यह दल मनभावनी वासन्ती सन्ध्यामें कोसलपुरवासियोंके प्राणोंमें प्राणसंचरण करता हुआ श्रीरामभद्रके आनुगत्यमें सरयू-पुलिनमें आ गया। सेवकों एवं अंगरक्षकोंका दल दूरसे ही जागरूक होकर निहारता चल रहा है, पर कोई भी निकट रहकर सुषमा-सरित्के निर्बाध-प्रवाहमें अवरोध उत्पन्न करनेका साहस नहीं कर रहा है। एक ओर निर्मलसलिला सरयू प्रवहमान हैं तो दूसरी ओर श्रीरघुनन्दनके श्रीअंगकी सुषमा-सरित् तीनों कुमारों एवं सखाओंके दलके साथ पृथक् ही प्रवाहित हो रही है। अब सभी सरयू-पुलिनके उस क्रीड़ा-प्रांगणमें आ गये, जो कुमारोंकी क्रीड़ाके लिये विशेष रूपसे बनाया गया था। धनुष और बाण—छोटी-छोटी धनुहियाँ, छोटे-छोटे बाण और तूणीर निकालकर रख दिये गये।

सभी कुछ कालके लिये दूर्वा-प्रांगणमें चक्राकार विराज गये हैं। श्रीरामभद्रके दक्षिण पार्श्वमें कुमार लक्ष्मण हैं तथा वाम पार्श्वमें श्रीभरत तथा कुमार शत्रुघ्न हैं। अन्य सखागण गोलाईसे बैठे हैं। सुहावना त्रिविध समीर अंगसेवामें सन्नद्ध है। सभी श्रीरामके मुखचन्द्रचन्द्रिकाका पान कर रहे हैं। खेल हो, परंतु कौन-सा खेल खेला जाय ? यही निर्णय करनेके लिये यह गोष्ठी राज रही है। सभी बालक पैदल ही चलकर आये हैं, रथोंको तो जाने कब कहाँसे, लगभग राजसदनसे निकलते ही छोड़ दिया गया था, अतः किंचित् श्रमापनयन भी हो रहा है।

हाँ भाई, बताइये कि आज कौन-सा खेल खेला जाय ?

श्रीरामभद्रने सखाओंकी ओर निहारते हुए पूछा। सभीकी सहमति हो तो आज पदकन्दुक-क्रीड़ा हो जाय। कुमार मणिभद्रने प्रस्ताव किया और सभीने 'ठीक है-ठीक है' कहकर अनुमोदन किया। इस कन्दुकक्रीड़ाके लिये तो दो दल होने चाहिये। जोड़ियोंका विभाजन होने लगा। बालकोंके दो दल पृथक्-पृथक् होने लगे। एक दलके नायक तो श्रीराम होंगे—यह तो निश्चित ही था, परंतु प्रतिपक्षका नायकत्व कौन करे? श्रीरामकी दृष्टि श्रीलक्ष्मण और भरतजीकी ओर गयी।

प्रभो! मैं तो आपके ही पक्षसे खेलना चाहूँगा। नहीं तो मुझे दर्शक ही रहने दिया जाय। कुमार लक्ष्मणने अपना दो टुक मत स्पष्ट कर दिया।

श्रीरामने प्यारसे उन्हें निहारते हुए, उनके निर्णयमें अपनी सहमति दे दी।

अब दृष्टि श्रीभरतपर गयी। शील, संकोच और समर्पण—धर्मके मूर्तरूप भरतकी आँखों—से—आँखें मिलाने हुए श्रीरामने मानो अनुरोध किया—भरत! क्या तुम भी ऐसा ही निर्णय करने जा रहे हो? बस, प्रभो! इस प्रकारकी नजरोंसे न निहारा जाय। प्रभुकी क्रीड़ाका सम्पादन हो, मैं प्रतिपक्षका नायकत्व स्वीकार करूँगा।

यह बात श्रीभरतने बोलकर नहीं, आँखों-ही-आँखोंके संकेतसे निवेदन कर दी और श्रीरामने घोषित कर दिया कि प्रतिपक्षका नायकत्व श्रीभरत करेंगे।

राम-लघन इक ओर, भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि-गनि गोइयाँ बाँटि लये॥

(गीतावली १।४५।१)

गगनमण्डलमें इस दिव्य क्रीडारसका आस्वादन करनेके लिये देवताओंके विमान दर्शकों और खिलाड़ियोंके समूहपर छाया किये हुए स्थिर हो रहे हैं। कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। कन्दुक मध्यमें रखा गया। श्रीरघुनन्दनने कन्दुकपर प्रथम पद-प्रेरित करके

कन्दुक श्रीभरतके दलमें आ गया। क्रीड़ाने गति ली।

एक लै बढ़त एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये।

(गीतावली १।४५।४)

पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों सम्पूर्ण प्रयासके साथ अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयासरत हैं। गेंद श्रीभरतके समीप आयी। श्रीभरतने वेगसे पद-प्रहार किया, मानो सन्देश दिया—अभागी गेंद, तू शान्तिके लिये बार-बार इधर क्यों आ रही है ? शाश्वत-शान्ति चाहती है तो जा प्रभुके चरण चूम।

गेंद (जीवात्मा) प्रभुके चरणोंके पास पहुँच गयी। प्रभुने पुनः प्रहार किया और गेंद श्रीभरतके चरणोंके समीप आ गयी। मानो प्रभुने कहा—

अरी गेंद ! शाश्वत शान्तिके प्रदाता तो श्रीभरत (सन्त)-के ही चरण हैं। मैं तो सदासे हूँ, सर्वत्र ही हूँ। सभीके हृदयमें निवास भी करता हूँ, परंतु—

अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

अतः मुझे प्रकट करके सभीके लिये उपयोगी बनानेवाले तो श्रीसन्त (भरत)-के ही अधिकारकी बात होती है। जा-जा तू उन्हींके चरणोंका आश्रय ले।

प्रभुके श्रीचरणका स्पर्श पाकर गेंद पुनः भरतके पास आयी। श्रीभरतने इस बार उसे इतने तेजसे लौटाया कि गेंद पुनः वापस नहीं आयी। सम्भवतः वह वहाँ पहुँच गयी, जहाँसे लौटनेकी प्रक्रिया विराम ले लेती है।

यद्गत्वा न निर्वर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

लोगोंने देखा कि गोल हो गया। सभीके मुखसे ध्वनि गुंजरित हुई श्रीभरतलाल विजयी हो गये।

एक कहत भइ हार रामजूकी,

एक कहत भइया भरत जये ॥

कन्दुकक्रीड़ाने विराम लिया। परंतु इधर एक अन्य क्रीड़ाका श्रीगणेश हो गया। श्रीराम आज अत्यन्त हर्षसे फूले नहीं समा रहे हैं। महादान प्रारम्भ हो गया है। हाथी, घोड़े, वस्त्र और आभूषण, जो कुछ भी सम्मुख दिखा, अयोध्यानरेशके बड़े राजकुमार आज खुले हाथ लुटाये जा रहे हैं। लक्ष्मण कुमारसे नहीं रहा गया और पूछ बैठे—

प्रभो ! आज यह दान किस उपलक्ष्यमें दिया जा रहा

लक्ष्मण ! तुम्हें तो ज्ञात ही है कि हमारी आजकी इस क्रीड़ामें हमारे लाडले भरत विजयी हुए हैं। अतः उनकी विजयके उपलक्ष्यमें यह दान दिया जा रहा है।

लक्ष्मण—विजयके उपलक्ष्यमें या अपनी हारके उपलक्ष्यमें ?

श्रीराम—लक्ष्मण ! हार और जीत तो क्रीड़ामें होती ही है। क्रीड़ाका मुख्य उद्देश्य तो मनोरंजन है।

लक्ष्मण—प्रभो ! वह तो ठीक है, परंतु यह दानका विधान कुछ समझमें नहीं आया।

राम—लक्ष्मण ! अच्छा यह बताओ कि दान किस-किस वस्तुका दिया जाता है ?

लक्ष्मण—प्रभो ! जिन वस्तुओंका दान दिया जाता है, वे सभी तो श्रीचरणसे अविविदित नहीं हैं।

श्रीराम—लक्ष्मण ! क्या सम्मानका दान भी दानकी किसी कोटिमें आता है ? मैं सोचता हूँ कि यदि हम दूसरोंको सम्मान देना सीख जायँ तो जीवनके अनेक विवाद स्वयं समाप्त हो जायँ। हाथी, घोड़ोंका दान तो एक निमित्त है लक्ष्मण ! यथार्थ तो सम्मान देना है। कविके मानसदृगोंने इस दृश्यको निहारा और वे उद्घोष कर उठे—

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन दान।

तुलसी कहत पुकार के बड़ो दान सम्मान ॥

इधर प्रभु दान देनेमें लगे हैं, परंतु अत्यन्त आश्चर्य कि उधर श्रीभरत भी मनमाना दान देनेमें लगे हैं—किसीने पूछा—

कुमार ! आपका यह दान किस उपलक्ष्यमें दिया जा रहा है ?

आजकी इस क्रीड़ामें मेरे प्रभु शरीरसे तो हार गये हैं, परंतु उनका स्वभाव विजयी रहा है।

श्रीभरतने बताया—

‘संतत दासन देहु बड़ाई’ यह प्रभुका स्वभाव है।

तथा ‘प्रभु अपने नीचहु आदरही’ यह उनकी वाणी है।

मेरा दान अपने प्रभुके शील-स्वभावकी विजयके उपलक्ष्यमें है।

धन्य है ऐसा दान और धन्य हैं ऐसे दानके दानी चक्रवर्ती महाराजके ये कुमार।

अच्छा और सच्चा मित्र शास्त्रों एवं नीतिग्रन्थोंके आधारपर वही है जो पापोंसे बचाता है, हितमें लगाता है,

इस प्रकार हमारे नीतिग्रन्थोंमें दानके माहात्म्यके अनेक प्रेरक श्लोक मिलते हैं, जिनको आचरणमें उतारनेसे जीवनमें सुधार आता है और परमार्थ-पथ प्रशस्त होता है।





COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING

दानधर्मकी महिमा

अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ॥

दानं तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत् ॥
इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् । ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ।

भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमनन्दः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदशचक्षुरुत्तमम् ॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽग्राणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥
वासोदशचन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः । धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ॥
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते । गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ॥

औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये । ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारसमन्वितम् । तीक्ष्णातपञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदानतः ॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाञ्च विशेषतः । दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ॥

[ब्रह्माजीने व्यासजीसे कहा —] सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु)—का प्रतिपादन (विनियोग) दान

कहलाता है—ऐसा दानधर्मको जाननेवाले विद्वानोंका कहना है । यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है । मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान—भोग सफल होता है । जो ईखकी हरी-भरी फसलसे युक्त या यव-गेहूँकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद् ब्राह्मणको देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता । भूमिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा ही । जलका दान करनेवाला तृप्ति (पूर्ण सन्तोष), अन्नका दान करनेवाला अविनाशी सुख, तिलदान करनेवाला अभीष्ट सन्तान तथा दीपदान करनेवाला उत्तम नेत्रज्योति प्राप्त करता है । भूमिका दान करनेवाला समस्त अभिलषित पदार्थ, स्वर्णका दान करनेवाला दीर्घ आयु, गृहका दान करनेवाला उत्तम भवनोंको तथा रजत (चाँदी)—का दान करनेवाला उत्तम रूप प्राप्त करता है । वस्त्र प्रदान करनेवाला चन्द्रलोक, अश्व प्रदान करनेवाला अश्विनीकुमारोंका लोक, वृषभका दान करनेवाला अखण्ड वैभव और गौका दान करनेवाला सूर्यलोक प्राप्त करता है । वाहन तथा शय्याका दान करनेवाला सुलक्षणा भार्या, भयभीतको अभयदान देनेवाला ऐश्वर्य, धान्य (अनाज आदि)—का दान करनेवाला शाश्वत सुख तथा ब्रह्मविद्या (वेदविद्या—आध्यात्मविद्या)—का दान करनेवाला शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति करता है । वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे दिव्य लोकमें प्रतिष्ठा होती है तथा गायको घास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है । ईंधन (अग्निको प्रज्वलित करने)—के लिये काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है । रोगियोंकी रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है । छत्र और जूतेका दान करनेसे मनुष्य प्रचण्ड धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाली नुकीली पत्तियोंसे परिव्याप्त असिपत्रवन नामके नारकीय मार्गको पार कर जाता है । जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे संसार या घरमें जो वस्तु अपने लिये अभीष्टतम है तथा अत्यन्त प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् सुपात्रको करना चाहिये । उत्तरायण, दक्षिणायन, महाविषुवत्काल (तुला और मेषसंक्रान्तिका काल), सूर्य तथा चन्द्रग्रहणमें एवं संक्रान्तियोंके आनेपर दिया गया दान परलोकमें अक्षय सुख देनेवाला होता है । इस प्रकारका दान प्रयागादि तीर्थोंमें तथा गयामें विशेष महत्त्व रखता है । [भगवान्की प्रीतिके लिये बिना किसी कामनाके किया गया दान सर्वोपरि कल्याणकारी है ।] दान—धर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है । [गरुडपुराण]